RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC-II/CPM/09/KPHO/2014-17
प्रधान डाकघर कानपुर–डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/–

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

सितम्बर–2016 | वर्ष – 08 | अंक : 08 | मूल्य : 5/–

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (हं. जल संस्थान), मा. छविलाल वर्मा (घरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली),
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश : सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741
सहायक ब्यूरो चीफ (महोबा) : हरि सिंह, राम नगर, चरखारी, महोबा। के.पी. टेलर्स, रंगमहल रोड, महोबा
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, ब्री–5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख कानपुर मण्डल :
पुष्पेन्द्र गौतम हिन्दुस्तानी, मल्हौसी, औरेया, उ.प्र. मो.: 9456207206
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम–सराय, औरंगाबाद, पो.–बहादुरगढ़,जिला–झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.–रामटौरिया, जिला–छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य :
दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट–III, बदरपुर, नई दिल्ली–44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.–1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला–अलवर–301001,
मो. : 09887512360, 0144–3201516
घिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला–अलवर, मो.–09829855349
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.–08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.–रिवई (सुमैचा), जिला–महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravlnbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.–रिवई (सुमैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपावक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें –
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा–पी.पी.एन. मार्केट, कानपुर
खाता सं.–33496621020 • IFSC CODE-SBIN001784

तपस्या का परीक्षण

1. गौतम ने सांख्य–मार्ग तथा समाधि–मार्ग का परीक्षण कर लिया था। लेकिन वह तपश्चर्य्या का परीक्षण बिना किये ही भृगुओं के आश्रम से चला आया था।
2. उसे लगा कि इसके बारे में भी उसका स्वानुभाव होना चाहिए ताकि वह अधिकार से इसकी चर्चा कर सके।
3. तद्नुसार गौतम गया पहुंचा। वहाँ पहुंच कर सबसे पहले उसने धूम फिर कर आस पास का इलाका देखा। बाद में उसने तपश्चर्य्या के लिये गया के राजर्षि नगरी के आश्रम मे– जो कि ऊरूवेला में था–निवास करने का निश्चय किया। तपश्चर्य्या के लिए नेरञ्जरा नदी के तट पर यह एक एकान्त स्थान था।
4. उल्वेला में उसे वह पाँच परिवाजक भी मिले जो उसे राजगृह में मिले थे और जिन्होंने उसे 'शान्ति का समाचार' लाकर सुनाया था। वे भी तपश्चर्य्या का अभ्यास कर रहे थे।
5. उन तपस्वियों ने उसे देखा और उसके पास आकर कहा कि वह उन्हें भी साथ ले लें। गौतम ने स्वीकार किया।
6. इसके बाद से वे उसकी सेवा करते हुए उसकी आज्ञा में रहने लगे। वे उसके प्रति बड़े विनम्र थे और जैसा वह कहे वैसा करने वाले थे।
7. गौतम की तपस्या तथा आत्म–क्लेश की प्रक्रिया अत्यन्त उग्र रूप की थी।
8. कभी कभी वह केवल दो तीन घरों पर ही भिक्षाटन के लिए जाता, सात घरों से अधिक पर कभी नहीं। और उन घरों में से भी एक एक घर से दो तीन कौर भोजन ही स्वीकार करता, सात कौर से अधिक किसी एक घर से नहीं।
9. एक दिन में एक दो कटोरी भर भोजन पर ही गुजारा करता, सात कटोरियों से अधिक किसी हालत में नहीं।
10. कभी कभी वह सारे दिन में एक ही बार भोजन करता, कभी कभी दो दिनों में एक बार, इसी क्रम से–कभी कभी सात दिनों में एक बार, या पन्द्रह दिनों में भी एक बार और बड़ी ही नपी–तुली मात्रा में।
11. जब उसने तपश्चर्य्या में और प्रगति की तो उसका आहार जंगल से इकट्ठी की हुई हरी जड़ें मात्र रह गया था, या अपने से उगे हुए जौ या धान के दाने, या पेड़ों की छाल के टुकड़े, या काई, या चावल के गिर्द भूसी के अन्दर के लाल कण, या उबले हुए चावल की पीछ, या सरसों आदि की खली।
12. वह जड़ें और जंगली फल खाकर रहता था, या जो स्वयं हवा से अपने आप गिरें।
13. उसके कपड़े या तो सन के बने थे, या सन की रस्सी और कूड़े के ढेरों पर पड़े हुए चीथड़ों के, या पेड़ की छाल के, या आधी या पूरी मृग–छाल के या घास के या छाल की लकड़ी की पट्टियों के, या आदमियों या पशुओं के बालों से बने कम्बलों के और या उल्लू के परों के।
14. वह अपने सिर और दाढ़ी के बाल नोच–नोच कर उखाड़ता था, वह हमेशा सीधा और पालथी मार कर बैठता था तथा वह पालथी मारे मारे आगे सरकता था–वह खड़ा नहीं होता था।
15. इस तरह से तथा और भी नाना प्रकार से वह अपने शरीर को कष्ट और पीड़ा पहुँचाता था–उस की तपश्चर्य्या इस सीमा तक पहुंच गई थी।
16. अपने शरीर के प्रति उपेक्षा के भाव को वह इस सीमा तक ले गया कि वर्षों तक उसके शरीर पर मैल जमती रही जो कि बाद में अपने आप गिरने लगी।
17. वह भयानक घनघोर जंगल में रहता था, ऐसे घनघोर जंगल में कि उसके बारे में कहा जाता था कि एक पागल के सिवा और कोई उस जंगल में प्रवेश करने का साहस नहीं कर सकता। यदि करेगा तो उसके रोंगटे खड़े हो जायेंगे।
18. शीत ऋतु में जब रातें भयानक ठण्डी हो जाती तो कृष्ण पक्ष के दिनों में रात को वह खुले में रहता और दिन के समय धुप अन्धेरे में।
19. और जब वर्षा के ठीक पहले ग्रीष्म ऋतु की भयानक गरमी पड़ने लगती तो दिन में वह सूर्य के नीचे रहते और रात को सांस घोट देने वाली गरमी में भीतर जंगल में।
20. वह श्मशान–भूमि में मुर्दों की हड्डियों का तकिया बनाकर लेटता।
21. इसके बाद गौतम एक दिन में एक ही फली खाकर दिन बिताने लगा–बाद में एक ही सरसों का दना–बाद में एक ही चावल का दाना।
22. जब वह एक दिन में केवल एक ही दाना खाकर गुजारा करने लगा तो उसका शरीर बहुत क्षीण हो गया।
23. यदि वह अपने पेट को स्पर्श करता, तो उसका हाथ उसकी पीठ को जा लगता, यदि वह अपनी पीठ को स्पर्श करता, तो उसका हाथ उसके पेट को जा लगता। उसका पेट और पीठ एक दूसरे के इतने नजदीक सट गये थे। यह सब कुछ उसकी अत्यन्त अल्पाहरता के कारण हुआ था।

साभार – भगवान बुद्ध और उनका धर्म
पृष्ठ सं. 58 से 60
डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

अस्पृश्यों का ईसाईकरण
I- भारत में ईसाई धर्म का विकास

भारत में ईसाई धर्म कितना पुराना है? भारतवासियों में उसने कितनी पैठ की है? जो भी अस्पृश्यों में रूचि रखता है, वह इन प्रश्नों को पूछने से नहीं चूकेगा। ये दो प्रश्न इतने गहरे जुड़े हैं कि ईसाई धर्म के प्रसार का प्रयास निरर्थक होता, यदि भारत में अस्पृश्यों का इतना विशाल समूह न होता, जो अपनी निजी परिस्थितियों के कारण ईसाई धर्म का सामाजिक संदेश सुनने के लिए सबसे अधिक तत्पर है।

निम्न आंकड़ों से कुछ अंदाजा हो जाएगा कि 1931 की जनगणना के अनुसार भारत में अन्य संप्रदायों के मुकाबले भारतीय ईसाइयों की संख्या कितनी थी।

भारत तथा बर्मा

धर्मवार आबादी (1)	जनगणना (1891) (2)	जनगणना (1921) (3)	जनगणना (1931) (4)	वृद्धि+ कमी– (5)
हिंदू	–	216,734,586	239,195,140	+10.4
मुस्लिम	–	68,735,233	77,677,545	+13
बौद्ध	–	11,571,268	12,786,806	+10.5
सिख	–	3,238,803	4,335,771	+33.9
आदिम धर्म	–	9,774,611	8,280,347	–15.3
ईसाई	–	4,754,064	6,296,763	+32.5
जैन	–	1,178,596	1,252,105	+6.2
पारसी	–	101,778	109,752	+7.8
यहूदी	–	21,778	24,141	+10.9
असूचित	–	18,004	2,960,187	.....
कुल योग		316,128,721	352,818,557	+10.6

यह सच है कि 1921 और 1931 के दौरान ईसाई धर्म ने भारी वृद्धि दिखाई है। वृद्धि की दृष्टि से सिख धर्म का स्थान प्रथम है। दूसरा स्थान ईसाई धर्म का है और धर्म–प्रचार करने वाले एक अन्य धर्म इस्लाम का स्थान तीसरा है। पहले और दूसरे स्थान में अंतर इतना थोड़ा है कि धर्म द्वारा प्राप्त दूसरे स्थान को प्रथम स्थान जैसा ही माना जा सकता है। फिर, दूसरे और इस्लाम द्वारा प्राप्त तीसरे स्थान के बीच अंतर बड़ा है कि ईसाई इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि उन्होंने इतने बड़े प्रतिद्वंदी को बहुत पीछे छोड़ दिया है।

इसके बावजूद तथ्य यह है कि 6,296,763 की यह संख्या कुल संख्या 352,818,557 में से है। इसका अर्थ है कि भारत में ईसाइयों की आबादी कुल आबादी की लगभग 1.7 प्रतिशत है।

II- धर्म प्रचार में लगाया गया समय तथा पैसा–और–

वह भी कितने समय में और कितने व्यय के बाद? जहां तक व्यय का संबंध है, कोई सही आंकड़ा नहीं दिया जा सकता। श्री जार्ज स्मिथ ने 1893 में 'दि कनवर्जन आफ इंडिया' (भारत का धर्म–परिवर्तन) पर अपनी पुस्तक प्रकाशित की थी। उसमें दिए गए आंकड़ों से कुछ आभास उन साधनों का लग जाता है, जिनका उपयोग गैर–ईसाई देशों में धर्म–प्रचार के लिए ईसाई देशों में किया था। उन्होंने कहा है :

विशेषतः पूर्वी चर्चों वाले एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका के उन प्रदेशों में जिनके लिए अधिकांश प्रयास अमरीकी करते हैं, हम उनके सशक्त तथा आवश्यक प्रयासों की गणना नहीं करते। न ही हम विशुद्ध आस्था और जीवन–शैली वाले ईसाइयों द्वारा ईसाइयों के लिए किए गए प्रयासों की गणना करते हैं। हम उन मिशनरियों की अनेक पत्नियों की गणना भी नहीं करते, आंकड़ों की दृष्टि से जिनका प्रतिनिधित्व उनके पति करते हैं। डेनिश मिशनरी सोसाइटी के अध्यक्ष माननीय जे. वाहल ने ये निष्कर्ष उन्हें छोड़कर दिए हैं। हम मानते हैं कि उनका आकलन सबसे सही ढंग से किया गया है और जहां आकलन के बिना काम नहीं चला, वहां लगभग अति सतर्कता से आकलन किया गया है। तुर्की और मिस्र में केवल मुस्लिमों के बीच किए गए काम का आकलन किया गया है।

	1890	1891
आय (अंग्रेजी धन)	पौंड 2,412,938	पौंड 2,749,340
मिशनरी वर्ग	4,652	5,094
मिशनरी वर्ग (अविवाहित महिलाएं)	2,118	2,445
देशी पादरी	3,424	3,730
अन्य देशी मददगार	36,405	40,438
ईसाई धर्म ग्रहण करने वाले	966,856	1,168,560

हमने 1892 के निष्कर्षों का ब्योरेवार आकलन नहीं किया है, क्योंकि वे प्रकाशित होने ही वाले हैं। वर्ष 1893 का तो सवाल ही नहीं उठता। लेकिन उसे विशेषज्ञ स्वयं ही कर सकते हैं। हम तो बस यही कहेंगे कि खासकर भारत में इन दो वर्षों में देशी ईसाईयों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। उसे ध्यान में रखते हुए अब उनकी संख्या 1,300,000 होनी चाहिए। उसके अनुसार सभी गैर–ईसाई देशों में देशी ईसाई समुदाय की संख्या 5,200,000 होनी चाहिए।

डीन वाहल के आंकड़ों का आधार वे रिपोर्टें हैं, जो अमरीका के लिए 1649 की क्रौमवेल्स न्यू इंग्लैंड कंपनी से लेकर 1891 तक की 304 मिशन सोसाइटियों और एजेंसियों से प्राप्त हुई हैं। अगले पृष्ठ पर परिष्कृत ईसाई जगत से प्राप्त विवरण का सारांश दिया गया है। सन् 1891 में ब्रिटिश साम्राज्य के 160 मिशन चर्चों तथा सोसाइटियों से 1,659,830 पौंड तथा अमरीका के 57 मिशन चर्चों आदि से 786,992 पौंड एकत्र किए गए। अंग्रेजी–भाषी दो बड़े देशों ने मिलकर गैर–ईसाई जगत के ईसाईकरण पर 24,46,822 पौंड खर्च किए। शेष 302,518 पौंड का अंशदान जर्मनी तथा स्विट्जरलैंड, नीदरलैंड्स, डेन्मार्क, फ्रांस, नार्वे, स्वीडन तथा एशिया ने किया।

अब इस ध्येय के लिए प्रयुक्त संसाधनों का अनुमान प्रस्तुत करना संभव नहीं है, क्योंकि अब उनका प्रकाशन नहीं किया जाता। लेकिन इस बात की जानकारी के लिए हमारे पास पर्याप्त आंकड़े हैं कि इन 60 लाख लोगों के ईसाईकरण में कितना समय लगा।

इस बात का कोई लेखा–जोखा नहीं है कि किस प्रथम मिशनरी ने भारत में आकर ईसाई धर्म का बीज बोया। ऐसा विश्वास है कि भारत में ईसाई धर्म का उद्‌गम देवदूत से हुआ। कहा जाता है कि देवदूत टामस इसके संस्थापक थे। ईसाई धर्म का उद्‌गम देवदूत से हुआ, यह केवल एक दंतकथा है, भले ही मद्रास के निकट तथाकथित सेंट टामस का माउंट है, जिसे देवदूत का कब्रिस्तान कहा जाता है। ऐसा कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है, जिससे पता चल सके कि पहली सदी में भी भारत में 'बाइबिल' के संदेश का प्रचार हुआ था। कुछ ऐसा साक्ष्य मिलता है कि दूसरी सदी में 'बाइबिल' का संदेश दक्षिण भारत में समुद्र तट पर बसने वालों, श्रीलंका के सीपी निकालने वाले गोताखोरों तथा मलाबार और कोरोमंडल के तटवर्ती किसानों के कानों में पड़ा था। जब वापस लौटने पर मिस्री नाविकों ने यह समाचार दिया तो वह अलेक्जांड्रिया के ईसाइयों में फैला। सबसे पहले अलेक्जांड्रिया ने भारत में एक ईसाई मिशनरी को भेजा। उसका नाम इतिहास में दर्ज है। उसका नाम पैन्टोनस है। यह यूनान के स्टोइक दार्शनिक थे। वह ईसाई बन गए थे। उन्हें अलेक्जांन्ड्रिया के बिशप डेमेट्रियस ने दीक्षार्थी– विद्यालय के प्रधानाचार्य और एकमात्र धर्म–शिक्षक के रूप में तत्वों और सिद्धांतों की शिक्षा देने के लिए की गई थी। 180 और 190 ई. के वर्षों के बीच किसी समय भारत के ईसाइयों ने अलेक्जांन्ड्रिया के बिशप से अपील की कि उनके पास किसी मिशनरी को भेजा जाए।

तद्नुसार, पैन्टोनस को भेजा गया। इसका कोई लेखा–जोखा नहीं है कि भारत में वह कितने दिन रहे, देश के भीतर उन्होंने कहां तक यात्रा की और वस्तुतः उन्होंने क्या–क्या कार्य किया। बस केवल इतना पता चलता है कि वह लौटकर अलेक्जांन्ड्रिया चले गए और 211 ई. तक उसके प्रधानाचार्य बने रहे।

तीसरी सदी के दौरान भारत में 'बाइबिल' के प्रचार–प्रसार के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। लेकिन यह तथ्य उल्लेखनीय है कि जब सम्राट कान्स्टेन्टाइन जोहानेस के धर्म–परिवर्तन के बाद 325 ई. में निकाका की धर्म परिषद् की बैठक हुई थी, तो एकत्रित धर्माधिकारियों में से एक ने स्वयं को फारस तथा विशाल भारत का अधिधर्माध्यक्ष बताया था। इस तथ्य से पता चलता है कि उस समय भारत के समुद्र तट पर ईसाइयों का एक विशाल और महत्वपूर्ण चर्च स्थापित था। दूसरी ओर, इसमें संभवतः उस धर्माध्यक्षीय दावे से कुछ अधिक दीख पड़ता है, जिसे एस्थर की पुस्तक के अनुसार सदा ही फारस के सामाज्य का प्रांत माना जाता रहा।

तीसरी सदी के प्रारंभ से पांचवी सदी के अंत तक घटनास्थल अलेक्जांन्ड्रिया से हटकर एंटियोक हो जाता है। ईसाई उद्यम का भार एंटियोक ने अपने कंधों पर ले लिया।

छठी सदी ईसाई धर्म के प्रचार के लिए अंतिम शांतिपूर्ण काल रही। लगता है कि वहां एक युग का अंत हो गया। उसके बाद सारसेनों (अरबों) का उत्थान हुआ। वे मुहम्मद के कुरान और तलवार को समूचे पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका तक ले गए। फिर उन्होंने स्वयं यूरोप को वियना तक और स्पेन से फ्रांस के मध्य तक आतंकित कर दिया। नतीजा यह हुआ कि सभी ईसाई दिशाहीन हो गए और उनका धर्म–प्रचार अनेक सदियों तक रूका रहा।

वर्ष 1497 में वास्कोडिगामा ने भारत की यात्रा की। उससे भारत में ईसाई धर्म–प्रचार के इतिहास का एक नया युग प्रारंभ होता है। वर्ष 1542 में महान मिशनरी फ्रांसिस जेवियर के आगमन से भारत में सर्वाधिक गंभीर तथा सुदृढ़ मिशनरी प्रयास प्रारंभ हुआ। पुर्तगाल वह पहली यूरोपीय शक्ति थी, जिसने पूर्वी भारत में पैर जमाए। उसके शासन–काल में भारत के मूल निवासियों के ईसाईकरण के सर्वप्रथम प्रयास किए गए। पुर्तगालियों के शासन–काल में जो धर्म–परिवर्तन किए गए, निश्चय ही वे रोमन कैथोलिक मत में किए गए। उन्हें रोमन कैथोलिक मिशनों ने किया।

लेकिन अधिक देर तक वे बिना होड़ के नहीं रहे। जल्दी ही होड़ के मैदान में प्रोटेस्टैंट आ गए। सर्वप्रथम प्रोटेस्टैंट प्रचार लुथेरनों का था। उन्होंने डेन्मार्क के राजा के संरक्षण में 1706 में ट्रेन्क्वेबार में अपने पैर जमाए। योग्य तथा समर्पित श्वार्ट्ज ने त्रिचनापल्ली तथा तंजोर में 18 वीं सदी के उत्तरार्ध में अथक परिश्रम किया। वह इस मिशन के सदस्य थे। उसके बाद इस मिशन का अधिकांश भार 'बाइबिल' प्रचार समिति द्वारा ले किया गया। उसके बाद कैरी के नेतृत्व में बैपटिस्ट मिशन 1793 में कलकत्ता में आया। अंत में एग्लिकन चर्च आया। वह मिशनरी क्षेत्र में 1813 में कूदा। उसके बाद मिशनरी उद्यम का विस्तार लगातार तेजी से हुआ।

अतः भारत में ईसाई प्रचार को लंबी दौड़ दौड़नी पड़ी है। सारसेनों के उत्थान से पूर्व वह चार सदियों तक प्रयास करता रहा। सारसेनों ने मिशन के कार्य पर विराम लगा दिया। सारसेनों के पतन के बाद उसे पुनः लगभग चार सदियों का समय मिला है। 60 लाख संख्या की यह कुल कमाई आठ सदियों की है। जाहिर है कि वह बड़ी निराशाजनक कमाई है। इसने सेंट जेवियर को निराश किया। इसने एब्बै डुबोइस को भी निराश किया। जेवियर के कोई तीन सौ साल बाद 1823 में उन्होंने लिखा कि हिंदुओं को ईसाई बनाने की आशा छोड़ देनी चाहिए। तब अधिक आशावादी ईसाई मिशनरियों ने उनकी आलोचना की थी। लेकिन तथ्य यह है कि इस अवधि की समाप्ति पर कोई 35 करोड़ 80 लाख की कुल आबादी में ईसाई केवल 60 लाख के लगभग हैं। यह अति मंद विकास है। प्रश्न यह है कि इस मंद विकास के कारण क्या हैं।

सामार – बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय–10
पृष्ठ सं. 361 से 366
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

आरक्षण की उपयोगिता छठवां अध्याय

जब हम आरक्षण के उपयोग और उसकी सफलता के बारे में बात करते हैं तो हमें इस पर संकुचित विचारों से ऊपर उठकर सोचना पड़ेगा। समय दर समय जातिगत आरक्षण की जरूरत पड़ती रहती है। 19वीं शताब्दी में अंग्रेजों ने मुसलमानों के हाथ से सत्ता छीन ली। इस देश में 1707 ई. में बादशाह औरंगजेब की सत्ता करीब–करीब सारे देश में थी और उसकी मौत के बाद मुगलवंश का पतन शुरू हो गया। ईरान के शासक राजा नादिरशाह ने 1739 ई. में दिल्ली पर आक्रमण कर दिया और कत्लेआम का आदेश देकर सब कुछ तहस–नहस कर दिया। अन्तिम बादशाह बहादुरशाह जफर के साथ ही हिन्दूओं और मुसलमानों का शासन अंग्रेजों के हाथों में चला गया। इस समय तक मुसलमान और अंग्रेजों के शासन में आरक्षण मौजूद था। अजीबों–गरीब बात यह थी कि सिर्फ अछूत जातियों को ही आरक्षण प्राप्त नहीं था। यह एक ऐसा हथियार बना कि इसका भरपूर फायदा ब्राह्मण जाति ने भी उठाया। यहाँ एक उदाहरण पेश कर रहा हूँ। सन् 1817 ई. के अधिनियम 7 में ब्राह्मणों को अपने विशेष अधिकारों को मनवाने का प्रावधान था। दूसरी ओर अछूतों को दुर्दशा का शिकार होना पड़ा था। सन् 1898 ई. में "गटेकर आयोग" के निर्णय के अनुसार महारों (स्वीपर) और चमारों को सेना से निष्काषित कर दिया गया। "पंजाब लैंड एलीनेशन एक्ट" के अनुसार सभी अछूतों के कृषि करने का अधिकार ही छिन गया। ऐसा प्रतीत होता है कि आरक्षण की मांग इसलिए होती थी कि हमें शक्ति प्राप्त हो। अगर हम भारतीय संविधान की ओर चलें तो संविधान सभा में भी "अल्पसंख्य संबन्धी समिति" भी थी। डा. एफीक जकारिया के अनुसार 25 मई 1949 को श्री सरदार पटेल जो आगे चलकर प्रथम गृहमंत्री भी बने, ने संविधान सभा को बताया कि अनुसूचित जाति के हिन्दूओं के साथ सिक्खों को रखा जाये। इसी कारण से संविधान के अनुच्छेद 25 में हिन्दू शब्द के साथ सिक्ख शब्द भी जोड़ा गया था। माननीय "गटेकर आयोग" के अनुसार महारों और चमारों को जातिगत आधार पर देश की सेवा करने का कोई अधिकार नहीं है ऐसा प्रतीत होता है। इतिहास की आंखों से मैं बहुत से साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता हूँ कि भारत की चाहे स्वतंत्रता की बात हो चाहे भारत के चहुमुखी विकास की बात हो, चाहे आध्यात्मिक आदि क्षेत्र की बात हो, इन दोनों जातियों ने अपने प्राणों की परवाह न करते हुए इस देश की सेवा की है। समय दर समय आरक्षण का लाभ प्राप्त कर अछूत लोगों ने उच्च से उच्चतम पदों को संभालकर शासन और प्रशासन के माध्यम से इस देश को फलाया–फुलाययाा है। इतना सब होने के बाद भी अछूतों का तिरस्कार चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक हो, भौतिक हो, धार्मिक हो, आध्यात्मिक हो, राजनैतिक हो, शैक्षिक हो, किया जाना चाहिए? क्या यही मानवता है? मैं ऊपर लिखे सभी क्षेत्रों के उदाहरण देकर अपनी पुस्तक को मोटी नहीं बनाना चाहता हूँ, क्योंकि पाठक शायद इन क्षेत्रों के उदाहरण से अनजान नहीं है। क्या अछूतों ने भी इस विषय में कोई चिन्तन किया है? या अछूत अपने इस तिरस्कार को अपना भाग्य समझता है? या अछूत को भविष्य में कोई घटना होने की संभावना दिखती है कि उसे भारत में मानवीय अधिकार प्राप्त होंगे? और भी सवाल संभव है। क्या कारण है कि एक अछूत हिन्दू धर्म को छोड़कर मुसलमान या हिन्दू से ईसाई धर्म को ग्रहण कर लेता है। हालांकि ईसाई धर्म में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के लोग भी प्रवेश कर ईसाई बन जाते हैं। इन तीन वर्णों के लोगों का ईसाई धर्म ग्रहण करने का कारण और परिस्थितियां कुछ भी हो सकती हैं। परन्तु भारी तादात में धर्म परिवर्तन शूद्रों और अछूतों का ही होता है। जब एक हिन्दू बौद्ध या सिक्ख या बहाई धर्म को ग्रहण करता है, तब कोई प्रतिक्रिया करने वाला नहीं होता, लेकिन जब वही व्यक्ति ईसाई या मुसलमान बनता है तो बड़ा बवाल होने लगता है। बादशाह औरंगजेब को सामने लाकर मुस्लिम धर्म को ही दोषी ठहराया जाता है। क्या अछूत ने इन प्रतिक्रियाओं पर चिन्तन करने की कोशिश की? या फिर आरक्षण को अमृत जानकर उसे पाने के लिए लालसा करता है। क्या यह जानने की कोशिश की कि यह आरक्षण प्राप्त कैसे हुआ है और कैसे अभी तक जारी है। मैं आपका ध्यान सन् 1932 ई. की ओर ले जाना चाहता हूँ। इस समय तक माननीय बाबा साहब के नेतृत्व को अछूत जातियों ने स्वीकार कर कदम से कदम मिलाकर चल रहे थे। हालांकि इस समय राव बहादुर एम. सी. राजा और दीवान बहादुर श्री निवासन भी ताकतवर दलित नेताओं में से थे, पर सभी बाबा साहब की ही बात मानते थे। माननीय डा. अम्बेडकर ने देश से लेकर लंदन तक अपनी आवाज उठाई परिणाम स्वरूप लंदन में "राउण्ड टेबिल कान्फ्रेंस" हुई और बाबा साहब को सफलता प्राप्त हो गई। इस गोलमेज सम्मेलन के मसौदे इतने पेचीदे और कठिन थे कि ब्रिटेन की सरकार को यह सम्मेलन सन् 1930 ई. सन् 1931 ई. और सन् 1932 ई. को आयोजित करना पड़ा। हर बार भारत से अछूतों के प्रतिनिधि के रूप में माननीय बाबा साहब को ही जाना होता था। परिणाम–स्वरूप 1932 ई. में बाबा साहब को सफलता प्राप्त हो गई।

मुसलमानों को बर्तानिया हुकूमत ने पहले से ही "प्रथक निर्वाचन" का अधिकार दे रखा था "अनुवाक" में 1916 ई. के कांग्रेस अधिवेशन का रिकॉर्ड लिखा है कि कांग्रेस पार्टी ने "प्रथम निर्वाचन को मान्यता दे दी थी जिससे प्रत्यासी और मतदाता दोनों ही मुसलमान होते थे। सिर्फ अछूत व आदिवासी ही इस अधिकार से वंचित थे। बाबा साहब का आंदोलन रंग लाया और अंग्रेजों ने "प्रथक निर्वाचन" का अधिकार इन्हें भी दे दिया। अब क्या था लंदन में कांफ्रेंस के बाद महात्मा गांधी जी की रातों की नींद गायब हो गई। उनके पास कोई रास्ता नहीं बचा था, इसलिए उन्होंने "आमरण अनशन" की घोषणा कर दी और पूना शहर की जेल ही में अनशन पर बैठ गए। श्री गांधी के प्राण दिन–प्रतिदिन संकट को झेल रहे थे, पर श्री अंबेडकर "प्रथक निर्वाचन" को छोड़ने को तैयार नहीं थे। देश के बड़े–बड़े हिन्दू नेता बेहद चिन्ता में पड़ गए। बाबा साहब पर बेहद दबाब पड़ने लगा। सभी जानते थे कि डा. अम्बेडकर साहब किसी के सामने झुक नहीं सकते हैं। इसलिए उन पर एक ही प्रभावडाला जा सकता था और वह था मानवता का प्रभाव। अंग्रेजी सरकार से कोई सहायता नहीं मिल सकती थी, क्योंकि ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के सामने लिखित में प्रथक निर्वाचन का अधिकार मिल चुका था। अगर उस समय की 30: मुसलमान और 24: अछूत और आदिवासियों की सरकार बन जाती तो देश की तस्वीर ही कुछ और होती, लेकिन इस आमरण अनशन ने परिस्थितियों को बदल दिया। श्री बाबा साहब को हिन्दुओं की मनसा का ज्ञान था, इसलिए श्री अंबेडकर "प्रथक निर्वाचन" प्रणाली को छोड़ना नहीं चाहते थे। उन्हें यह ज्ञात था कि आर.एस.एस. जिसकी स्थापना 1925 ई. में मराठी ब्राह्मणों ने की थी, अछूत जातियों की स्थिति को कैसा बनाए रखना चाहता है। उसने अर्थात आर.एस.एस. ने अपने जन्म के समय ही घोषित किया कि गैस हिन्दू अतिथि के रूप में तो यहाँ रह सकता है, पर वह भारत का नागरिक नहीं हो सकता है। आजादी मिलने के साथ ही आर.एस.एस. एक कदम और आगे बढ़ गया और 1947 ई. में जो साहित्य उसने वितरित किया, उसमें घोषणा की कि प्रत्येक गैर हिन्दू को इस देश में हिन्दू पद्धति ही अपनानी होगी। इसका मतलब यह है कि एक–एक ईसाई और एक–एक मुसलमान को अपने धार्मिक विश्वास और धार्मिक जीवन शैली को छोड़ना होगा। आर.एस.एस. शायद यह भूल गया कि तमाम मुसलमान और ईसाइयों के पुरखे उस समय भारत के नागरिक थे। जब मराठी ब्राह्मणों के पुरखे भारत में आए भी नहीं थे। श्री गांधी के आमरण अनशन के कारण आर. एस.एस. विचलित हो गया। डा. अम्बेडकर को मनाने के लिए सभी हिन्दू नेता एक हो गए और श्री अम्बेडकर को मनाने में सफल हो गए। फलस्वरूप श्री गांधी की प्राण रक्षा के लिए बाबा साहब को 24 सितम्बर 1932 ई. को एक लिखित समझौता करना पड़ा। इसी समझौते को इतिहास "पूना पैक्ट" कहता है। आगे चलकर इसके गंभीर परिणाम इस देश को भोगने पड़े क्योंकि मुसलमानों के भी अधिकार जाते रहे और 1947 ई. को ही देश का बंटवारा हो गया। इस तरह जो आरक्षण प्राप्त हो रहा है, वह "प्रथक निर्वाचन प्रणाली के आधार पर मिलने वाली राजनैतिक सत्ता के बदले ही मिल रहा है। मैं आरक्षण की इस उपयोगिता या अनुपयोगिता को आपके गंभीर चिन्तन पर छोड़ रहा हूँ। आपको स्वयं ही चिन्तन करना है कि इस आरक्षण के होने के बाद भी लोग हिन्दू धर्म को त्यागकर ईसाई या मुसलमान बन जाते हैं। संविधान के अनुच्छेद 341 में स्वयं बाबा साहब ने ही अछूतों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की थी फिर क्या कारण था कि बाबा साहब ने भी सन् 1956 ई. में लाखों अनुयायियों के साथ हिन्दू धर्म को छोड़कर बौद्ध धर्म को ग्रहण कर लिया था। बाबा साहब श्री गांधी और हिन्दूओं नेताओं की मनसा से अच्छी तरह परिचित थे। एक बानगी आपके सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ मैंने भारतीय संवधिान सभा की "अल्पसंख्यक समिति" का आलेख पहले किया है, इसके अध्यक्ष श्री मास्टर तारा सिंह थे। श्री तारा सिंह, श्री अंबेडकर को सिक्ख धर्म में शामिल करना चाहते थे। यह घटना 1936 ई. की है। इस समय डा. अंबेडकर जी का नेतृत्व 9 करोड़ लोग मानते थे। श्री तारा सिंह इन 9 करोड़ लोगों को हिन्दू से सिक्ख बनाना चाहते थे। इस संबन्ध में श्री तारा सिंह ने श्री गांधी को पत्र लिखा था। श्री गांधी ने उत्तर में लिखा कि मैं तो राष्ट्रवादी हूँ। मेरी निगाह में सभी धर्म के लोग समान है। इस पर श्री तारा सिंह ने "हिन्दू–सिक्ख मिशन" के जनरल सेक्रेटरी मास्टर सुजान सिंह को श्री महात्मा गांधी से पूछा कि महात्मा जी, अगर अछूत लोग हिन्दू धर्म को छोड़कर सिक्ख धर्म को ग्रहण करें तो आपको कोई एतराज तो नहीं होगा? इस पर गांधी जी ने कहा कि क्या सिक्ख हिन्दू हैं? श्री सुजान सिंह ने उत्तर दिया कि नहीं। गांधी जी ने कहा कि तो फिर अछूत हिन्दू सिक्ख क्यों बने? वह मुसलमान या ईसाई क्यों न बने। श्री सुजान सिंह को खाली हाथ वापस आना पड़ा और यह धर्म को छोड़ने में सन् 1958 तक पूरे 20 वर्ष लगा दिए। अब निर्णय आपको ही करना है कि आपको किस धर्म में मरना–जीना है। भारतीय संविधान में शायद इसीलिए श्री तारा सिंह को यह व्यवस्था लानी पड़ी कि अनुच्छेद 25 में हिन्दू शब्द के साथ सिक्ख शब्द भी जोड़ा गया। आरक्षण की उपयोगिता अछूतों में किस तरह और किस हद तक सहयोगी है, इस पर चिन्तन आपको ही करना है। यह किस क्षेत्र में उपयोगी है और कितना यह आपको ही समझना है। अगर आप आरक्षण के बल पर किसी जिले के जिलाधिकारी बन गए हैं तो आपको राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, मानसिक या पद की गरिमा में आपकी कितनी समानता प्राप्त हुई है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप जिलाधिकारी की हैसियत से किसी हिन्दू मन्दिर में पूजा–आराधना के लिए गए थे और आपके जाने के बाद उस मन्दिर के सिर्फ गर्भ–गृह को ही नहीं बल्कि उस मन्दिर प्रागण को ही पूरे विधि–विधानों के साथ दूध से धोकर उसका शुद्धिकरण किया गया हो? खैर आप तो जिलाधीश ही हुए, मैं तो केन्द्रीय मंत्री की बात करना चाहता हूँ। कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्हें भी इसी तरह जलील कर देने वाली परिस्थिति का सामना करना पड़ा हो? मैं यहाँ पर नामों का खुलासा नहीं करना चाहता हूँ, परन्तु मैं यह कहना चाहता हूँ कि कहीं आप ऐसी घटनाओं के खिलाफ मुर्दाबाद के नारे लगाकर आत्म संतुष्टि तो नहीं कर रहे हैं? अगर ऐसा नहीं तो क्या–क्या शांत होकर बैठ गए है? अगर ऐसा है तो वह जलील होने

वाला अधिकारी या आपका प्रतिनिधि आपका भाई नहीं? और अगर भाई है तो आपने क्या सोचा? जब आप एक चर्च में जाते हैं, मस्जिद में जाते हैं, गुरूद्वारे में जाते हैं तो आपके जाने के बाद क्या इन्हें शुद्ध किया जाता है या इनमें प्रवेश करने से रोका जाता है? क्या है आरक्षण की उपयोगिता? अगर मैं शासन की बात छोड़ भी दूँ तो प्रशासन में आरक्षण की उपयोगिता के बारे में कुछ प्रमाण अवश्य ही प्रस्तुत करना चाहता हूँ जिन्हें नकारा नहीं जा सकता है। हमारा देश, वर्गों, जातियों, उपजातियों में बंटा हुआ देश है। इसलिए सन् 1947 ई. में आजादी मिलने के बाद पिछड़ी जातियों की दशा जानने के लिए तत्कालीन गृहमंत्री माननीय सरदार बल्लभ भाई पटेल ने "पिछड़ा वर्ग आयोग" का गठन किया जिसके अध्यक्ष माननीय काका कालेलकर थे। संसद में आयोग की रिपोर्ट पेश होती, इससे पहले ही श्री सरदार पटेल की मृत्यु हो गयी। अब गृहमंत्री हिन्दूओं के बड़े नेता पं. गोविन्द बल्लभ पंत बना दिये गए और काका साहब की रिपोर्टपर संसद में बहस तक न हो पाई। समय चक्र गतिमान रहा और सन् 1977 ई. में श्री चौधरी चरण सिंह केन्द्रीय गृहमंत्री बने तो उन्होंने पिछड़ी जातियों के आरक्षण का मामला उठा दिया। परिणाम यह हुआ कि इस बार "मंडल आयोग" बनाया गया। विद्वान मनीषी माननीय मंडल ने अपनी रिपोर्ट रखते हुए 52% जातियों को आरक्षण देने की सिफारिश कर दी। अब तक सरकार फिर से बदल चुकी थी और सत्ता गांधी परिवार के हाथों में आ गई थी। जिस तरह कालेलकर साहब की रिपोर्ट को कांग्रेस ने दबाकर रखा था उसी तरह श्रीमति इंदिरा गांधी और श्री राजीव गांधी ने 10 वर्षों तक रिपोर्ट को दबाए रखा। सन् 1989 ई. में जनता दल की सरकार आ गई। इस समय माननीय विश्वनाथ प्रताप सिंह प्रधानमंत्री थे और उन्होंने मंडल आयोग की सिफारिशें लागू कर दीं। अछूत और आदिवासियों की जनसंख्या 24% है। और आरक्षण सिर्फ 22.5% ही प्राप्त है जो सन् 1988 ई. तक प्रथम श्रेणी की नौकरियों में 10% लोग ही पहुँच गए हैं। 12.5% आरक्षण पर कोई और ही कब्जा जमाए हुए है। कमोवेश वहीं दुर्दशा "मंडल आयोग" की सिफारिशों की है। आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक 3743 जातियां पिछड़े वर्ग में आती है अर्थात 52% जनसंख्या पिछड़े वर्गों की है। सन् 1998 ई. तक प्रथम श्रेणी के कर्मचारियों में 5% ही आ पाए अर्थात 10 गुना हिस्सा कोई और ही दबाए बैठा है। सरकारी जनगणना के आंकड़ों के अनुसार सर्वाधिक ब्राह्मण 9% उ.प्र. में पाए जाते हैं। दक्षिण भारत में ब्राह्मण 3% से भी कम है। इस तह पूरे भारत में ब्राह्मणों का औसत 4.5% है। ब्राह्मण और वैश्य को मिलाकर जोड़ें तो इनकी गणना 6% से अधिक नहीं है। परन्तु सन् 1988 ई. तक प्रथम श्रेणी की नौकरियों में 15% वैश्य, 40% ब्राह्मण अर्थात 55% सीटों पर जमे हैं। घोर आश्चर्य। 6% जनता 55% पदों पर जमी हुई है। आंकड़ों को देखा जाए तो शायद वर्तमान में ये लोग 60% से अधिक पर कब्जा जमा चुके होंगे। जरा सोंचे कि 6% लोग देश के 94% लोगों के अधिकारों का हनन कर रहे हैं। चिन्तन करे और आगे के आंकड़ो को ध्यान से पढ़ें। केन्द्र की सरकार में 80 सचित होते हैं। जब किसी सविच की जगह किन्हीं कारणों से खाली होती है तो केन्द्र और प्रदेशों को मिलाकर एक खाली स्थान के लिए 3 कर्मचारी छांटे जाते हैं। आरक्षण वाले कर्मचारियों की गुप्त रिपोर्ट प्रायः खराब ही कर दी जाती है, जिसके कारण वे 3 में नहीं आ पाते हैं। अगर सौभाग्य से कोई कर्मचारी आ भी गया तो उन 3 कर्मचारियों में से 1 को ही लिया जाना होता है और इस तरह आरक्षण वाले का नाम ही काट दिया जाता है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में से कभी भी आरक्षित कोटे का कर्मचारी सचिव पद पर नहीं पहुँचा। उत्तर प्रदेश देश का आज भी सबसे बड़ा राज्य है। यहाँ पर 4 बार अछूत ही मुख्यमंत्री रहा। क्या इस मुख्यमंत्री को इस बारे में अपने ही भाई या बहिन के बारे में नहीं सोचना चाहिए था? क्या जोड़-तोड़ की कुटिल राजनीति का सहारा लेकर सिर्फ सत्ता की कुर्सी पर ही बैठना उद्देश्य था? ऐसे नेताओं में सिद्धान्त हीनता तो इस कदर पाजी जाती है कि चुनाव किसी पार्टी से गठबन्धन करके लड़ते हैं और सरकार सांप्रदायिक पार्टी के साथ चलाते हैं। सन् 1991 ई. तक 59 अतिरिक्त सचिवों में से केवल 2 ही अछूत हैं जबकि आरक्षण 22.5% को प्राप्त है। इसी तरह 300 संयुक्त सचिवों में से केवल 15 ही अछूत हैं। एक सवाल यह है कि भारत में गरीबों की संख्या 90% है और यह अछूतों, पिछड़ों, और मुसलमानों की है। अब सोचिए कि जो आरक्षण प्राप्त है उसे हमें दिया ही नहीं जा रहा है तो 90% लोगों को भी यदि आरक्षण मिल जाए तो भी क्या कुछ होगा? मैं आप पर यह चिन्तन छोड़ता हूँ। दूसरा सवाल यह है कि संविधान के अनुच्छेद 29-30 में शिक्षा का अधिकार दिया गया। यह 90% जनता किसी शिक्षित हुई है? भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14-15 में समानता का अधिकार दिया गया है। क्या यह अधिकार लागू है? ऐसा तो नहीं कि ब्राह्मणवादी मानसिकता इन अधिकारों पर भी हावी है? अगर ऐसा है तो आप गंभीरता से चिन्तन करें। सन् 2002 ई. में 86 वां संविधान संशोधन किया गया। इसमें अनुच्छेद 51 ए में संशोधन करके (जे) तथा बाद में (के) जोड़ा गया। इस अनुच्छेद में देश के प्रति बहुत से उप-कर्त्तव्य देश के नागरिक के लिए बताए गए हैं जिसमें 90% यही जनता पूरी तरह खरी उतरती है, परन्तु 10% उच्च वर्ग के ठीक इसके विपरीत कार्य करते हैं जिनका विवरण प्रस्तुत करने के लिए एक अलग ही पुस्तक लेखन करना पड़ेगा। मैं तो यहाँ सिर्फ आरक्षण की बात रखना चाहता हूँ कि हमें कितना आरक्षण दिया गया और हमने कितना प्राप्त किया। मैं कुछ और उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। पिछड़े वर्ग को 27% आरक्षण प्राप्त है, परन्तु 2013 ई. तक सभी तरह की सरकारी नौकरियों में सिर्फ 6-7% लोग पहुँच पाए हैं यह 20% आरक्षण कौन हड़प कर रहा है। इस बात का खुलासा लो. ज.पा. के अध्यक्ष माननीय रामविलास पासवान ने किया है। श्री पासवान खुद ही अछूत जातियों में आते हैं, लेकिन बिहार में इस जाति को आरक्षण ही से बाहर रखा गया था। भला हो कि तत्कालीन मुख्यमंत्री माननीय श्री जीतनराम मांझी का कि उन्होंने सन् 2015 ई. में कैबिनेट की बैठक कर पासवान जाति को आरक्षण प्रदान किया। कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय की संसदीय समिति ने खुलासा किया कि 2013 ई. तक सरकार के विभिन्न मंत्रालयों में "सचिव" स्तर का एक भी अधिकारी न तो एस.सी है और न ही एस.टी. वर्ग का है। घोर आश्चर्य आजादी के इन 62 सालों में आरक्षण सिर्फ एक झुनझुनी ही बना रहा जिसे बताकर एक अछूत उत्तर प्रदेश जैसे प्रदेश का मुख्यमंत्री बन जाता है और चैन की बंसी बजाकर खुद आनन्द लेने लगता है। मैं यहाँ यह बताना चाहता हूँ कि महामहिम राष्ट्रपति को सर्वोच्च संवैधानिक शक्ति प्राप्त है। सन् 1997 से 2002 तक डॉ. के. आर. नारायण भारत के महामहिम थे। क्या माननीय डा. साहब ने आरक्षण के प्रति अपने अधिकार का प्रयोग किया? नेताओं के और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। पर दूसरी ओर गुजरात की ओर चलें, वहाँ सन् 2014 ई. तक मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी थे। श्री मोदी मोढ़ घांची जाति से आते हैं। जो गुजरात में ऊंची और संपन्न जाति थी। सन् 1999-2000 ई. में 4 अप्रैल 2000 को राजग सरकार ने इसे पिछड़ा वर्ग बना दिया। इस तरह मोदी जी अपने प्रयास में सफल रहे और 27% आरक्षण के बल पर यह जाति सार्वजनिक धन-संपत्ति की लूट-खासोट करने लगी। इस राज्य की बर्बरता को देखिए कि माननीय मोदी जी ने 2014 ई. तक अछूत और आदिवासियों को आरक्षित 27,000 खाली पदों में इन जातियों को अवसर न दिया। एक आरे उत्तर प्रदेश को देखिए कि 2013 ई. तक 20 जातियां पिछड़े वर्ग में दर्ज ही नहीं है। सच्चाई यह है कि सच में ये जातियां पिछड़ी हैं। मैं यू.पी. के बारे में क्या लिखूं। आज भी प्रदेश के कई जिलों में यह हालत है कि एक अछूत जब किसी स्वर्ण के घर सामने से गुजरता है तो अपने जूते उतारकर हाथ में लेना पड़ता है। इन जातियों की महिलाओं का यौन शोषण भी स्वर्णों द्वारा किया जाता है, और भी अत्याचार जारी हैं। क्या कर रहा है आरक्षण और अछूतों का प्रतिनिधि? सोचे, मैंने आरक्षण पाने के बाद भी अछूतों की तस्वीर आपके सामने पेश की है। निर्णय आप पर निर्भर करता है कि आप क्या कदम उठाते हैं। क्या आप इसी जलालत में जीना चाहते हैं? आप जानते है कि यह देश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्णों में बंटा है। 90% गरीबी सिर्फ शूद्र वर्ण में ही पायी जाती है। 22.5% अछूत, 10.5% अल्पसंख्यक, 52% पिछड़ी जातियां यानी 85% अवर्ण और 15% ही स्वर्ण जातियां है। अब आप खुद ही सोंचे कि इतना भारी भरकम आरक्षण के बाद भी आपकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति क्या है? सन् 1910 ई. तक दुनिया भर के भूखे पेट सो जाने वाले 80 करोड़ लोग थे, परन्तु "ग्लोबल हंगर इंडेक्स" की रिपोर्ट के अनुसार सन् 1911-1913 के बीच यह संख्या 84 करोड़ बीस लाख हो गई इसमें भारत का स्थान चौथाई है यानी 21 करोड़ से अधिक लोग भूखे पेट ही सो जाते हैं। भूखे पेट सोने वाले लोगों की संख्या 85% अवर्णों को ही है। हमारे देश में जो भी सरकार आ जाती है, वह आंकड़ों के खेल की बाजीगरी दिखाकर सत्ता में बैठी रहना चाहती है। एक नमूना और देखिए कि "योजना आयोग" ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि 2106 करोड़ ग्रामीण इलाकों में गरीबी रेखा से नीचे हैं। वहीं आयोग के सदस्य श्री अभिजीत सेन की अध्यक्षता वाली एस.ई.सी. ने अपनी रिपोर्ट सन् 2011 ई. के अध्ययन के अनुसार यह संख्या 24.8 करोड़ बताई है। कितना विरोधाभास है। अगर तेंदुलकर समिति की रिपोर्ट पर जायें तो आप पायेंगे कि 75% ग्रामीण और 50% शहरी लोग गरीब हैं। आप इन तीनों रिपोर्टों के भारी अन्तर को देख रहे हैं। ऐसा इसलिए है कि ये रिपोर्ट ए. सी. कमरों में ही तैयार की जाती है। चुनाव के समय तो ये माननीय आपके द्वार पर चिलचिलाती हुई धूप की तपिश में भी पहुँच जाते हैं। चुनाव जीतने के बाद की तस्वीर आपके सामने है। सरकार अपनी आर्थिक नीतियां इस तरह बनाती है कि 15% सवर्ण जाति के लोग 17% सम्पत्ति के मालिक गए हैं और 83% जनता भुखमरी की कगार पर बनी रहती है। वैसे तो गरीबी दूर करने के लिए अब तक की सरकार के पास 225 से अधिक योजनाएं हैं, लेकिन मैंने आपके सामने सच्चाई रख दी है। मैं अछूतों, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों से पूछना चाहता हूँ आप इन 21 करोड़ भूखे लोगों के लिए क्या कर रहे हैं? क्या आरक्षण की लड़ाई लड़ सकते हैं? क्या भूखे लोग समानता की लड़ाई लड़ सकते है? क्या सिद्धान्तहीन, अवसरवादी, सत्तालोलुप, दिशाहीन, अछूतों की पीठ में छुरा घोपने वाले नेता भी एक हो जायें तो क्या सफल आरक्षण भी लड़ पायेंगे? क्या आरक्षण पूरा करने के लिए कोई सफल आन्दोलन चलाया गया? अगर आपका उत्तर हाँ में है तो आपको हार्दिक बधाई और अगर नहीं तो मैं आपको माननीय बाबा साहब के पास ही ले चलता हूँ। क्या अंबेडकर साहब अदूरदर्शी थे कि अछूत (दलित) आरक्षण प्राप्त होने के बाद भी 1956 में बौद्ध धर्मी हो गए। मैं आपको याद दिला दूं कि 1956 ई. में बौद्ध धर्म में आरक्षण का प्रावधान नहीं था जबकि सिक्ख धर्म में आरक्षण का प्रावधान था यानि उन्हें सिक्ख धर्म ग्रहण करना चाहिए था। माननीय अंबेडकर जानते थे कि आरक्षण की बैसाखी कभी भी एक अछूत को स्वाभिमानी नहीं बना सकती है और न ही उसे समाज में बराबरी का दर्जा दे सकती है। माननीय अंबेडकर सिर्फ एक विद्वान ही नहीं थे, पर वह एक भविष्यदर्शी भी थे। उन्होंने ही संविधान के अनुच्छेद 341 में आरक्षण का प्राविधान किया था। देश की 85% मूल आबादी का भी उन्हें मान था इसलिए अनुच्छछेद 340 और अनुच्छेद 342 का भी आरक्षण के लिए प्राविधान किया था। इतना सब करने के बाद उन्हें यह ज्ञान था कि भविष्य में भी 85% मूल निवासी अंधकार में ही भटकते रहेंगे। इसलिए 14 अक्टूबर सन् 1956 ई. में उन्होंने 3 लाख से अधिक लोगों के साथ धर्म परिवर्तन कर लिया। आप क्या सोचते हैं कि महामना बौद्धिसत्व बाबा साहब डा. भीमराव अम्बेडकर का निर्णय गलत था? चिन्तन करें और निर्णय लें कि आपको आरक्षण की बैसाखी के सहारे सांस लेनी या स्वाभिमान और सामाजिक बराबरी की जिन्दगी जीनी है।

पा0 टामस मैसी
206ए, गोविन्द नगर
कानपुर-208006

अशोक विजयदशमी

वर्तमान में दशहरे का स्वरूप

यह पर्व आश्विन मास की शुक्ल-पक्ष की दशमी को मनाया जाता है। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार इसी दिन रामचन्द्र ने लंका पर चढ़ाई करके महाराजा रावण पर विजय प्राप्त की थी। अर्थात् राम ने रावण की हत्या की थी। विजयदशमी को राष्ट्रीय पर्व की मान्यता प्राप्त है। वैसे मुख्य रूप से यह हिन्दू वर्ण-व्यवस्था के आधार पर क्षत्रिय का त्योहार माना जाता है क्योंकि यहा वर्ण-व्यवस्था के आधार पर ही सब चीजों का बंटवारा निर्धारित है चाहे वह जन्म, कर्म हो या फिर रस्मो-रिवाज या त्योहार आदि ।

दशमी के दिन लगातार दस दिनों तक धमूधाम के साथ निकाली जाती है और रावण वध का प्रदर्शन होता है तथा मेले-तमाशे का आयोजन और दुर्गा पूजन होता है। उसी दिन हिन्दुओं के लिए नीलकठ पक्षी का दर्शन बड़ा शुभ माना जाता है।

दशहरे से जुड़ी हिन्दू मान्यताएं

दशहरे के सम्बंध में कही जाने वाली कुछ कथाएं इस प्रकार हैं-

1. एक बार पार्वती जी ने शंकर से पूछा कि "लोगों में दशहरे का त्योहार प्रचलित है, इसका क्या फल है?" तो शिवजी ने बताया कि "आश्विन शुक्ल दशमी को सायंकाल में तारा उदय होने के समय 'विजय' नामक काल होता है जो सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला होता है। शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए राजा को युद्ध के लिए इसी समय प्रस्थान करना चाहिए।" इसकी पुष्टि हिन्दू ग्रंथ ज्योतिर्निबन्ध से भी होती है। इस दिन यदि श्रवण नक्षत्र का योग हो तो और भी शुभ है। रामचन्द्र जी ने इसी 'विजय-काल' में लंका के महाराजा रावण पर विजय पाई थी। इसलिए यह दिन हिन्दुओं के लिए बहुत बड़ी खुशी का पवित्र दिन माना जाता है। और क्षत्रिय लोग इसे अपना प्रमुख त्योहार मानते है क्योंकि रामचन्द्र भी क्षत्रिय थे।

हिन्दुओं की ऐसी मान्यता है कि शत्रु से युद्ध करने का प्रसंग न होने पर भी इस विजय-काल में राजाओं को अपनी सीमा का उल्लंघन अवश्य करना चाहिए । अपने तमाम दल-बल को सुसज्जित करके पूर्व दिशा में जाकर शमी वृक्ष का पूजन करना चाहिए । क्योंकि यह शमी वृक्ष सभी पापों को नष्ट करने वाला है तथा शत्रुओं को भी पराजय देने वाला है। इस वृक्ष ने अर्जुन के धनुष को धारण किया था और रामचन्द्र के लिए भी विजय की घोषणा की थी। पार्वती ने शमी वृक्ष के बारे में स्पष्टीकरण चाहा तो शिवजी ने उत्तर दिया "दुर्योधन ने पांडावों को जुए में हराकर इस शर्त पर वनवास दिया था कि वे बारह वर्ष तक जैसे चाहें वैसे प्रकट रूप से वन में रह सकते हैं। लेकिन एक वर्ष बिलकुल अज्ञातवास में रहना होगा। यदि इस वर्ष में उन्हें कोई पहचान लेगा तो उन्हें बारह वर्ष और भी वनवास भोगना पड़ेगा। उस अज्ञातवास के समय अर्जुन अपना धनुष बाण इसी शमी वृक्ष पर रखकर राजा विराट के यहाँ बृहन्नला (हिजड़ा) के वेश में रहे थे। विराट के पुत्र कुमार ने गौओ की रक्षा के लिए बृहन्नला को अपने साथ लिया। शमी ने अर्जुन के शास्त्रों की रक्षा की थी और अर्जुन ने सही समय पर शस्त्र उठाकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी।"

विजय दशमी के दिन रामचन्द्र ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्थान करने के समय शमी वृक्ष ने कहा था कि आपकी विजय होगी। इसलिए उसी विजय काल में ही शमी वृक्ष की भी पूजा का महत्व है।

2. एक बार राजा युधिष्ठिर ने भी कृष्ण से विजयदशमी के बारे में पूछा तो कृष्ण ने बताया कि- "हे राजन! विजयदशमी के दिन राजा को स्वयं अलंकृत होकर अपने दासों और हाथी, घोड़ों का श्रृंगार करना चाहिए तथा गाजे-बाजे के साथ मंगलाचरण करना चाहिए। उसे इस दिन अपने पुरोहितों को साथ लेकर पूर्व दिशा में प्रस्थान करके अपनी सीमा से बाहर जाना चाहिए और वहां शस्त्र-पूजा करके अष्टदिग्पालों तथा पार्थ देवता की वैदिक मंत्रों से पूजा करनी चाहिए। शत्रु की मूर्ति पुतला बनाकर उसकी दाती में बाण भेदना चाहिए तथा उसी समय पुरोहित से मंत्रों का उच्चारण करवाना चाहिए। ब्राह्मण की पूजा करके हाथी, घोड़ा, शस्त्र आदि का निरीक्षण करना चाहिए। यह सब क्रिया सीमान्त में करके अपने महल को वापस आना चाहिए जो राजा इस विधि से पूजन करके विजयदशमी की रस्म पूरी करता है वह सदा अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करता है।" हिन्दू धर्म में दशहरा (विजयदशमी) के लिए उपरोक्त प्रकार की मान्यताएं और कथाएं प्रचलित और मान्य हैं। किन्तु यह उनका अपना दृष्टिकोण है। जो हमने आपकी जानकारी के लिए उल्लेखित किया है।

वास्तविकता

आइए, अब हम दशहरे पर एक तर्कशील एवं बुद्धिवादी दृष्टिकोण रखते हुए उसके वास्तविकता स्वरूप को देखने-परखने का प्रयास करें।

भारत में दशहरे को हिन्दू लोग प्रायः दो तरीको से मनाते हैं। एक राम द्वारा रावण पर जीत कराके तथा दूसरे बड़े पैमाने पर देवी (दुर्गा) का पूजन करके। एक ही त्योहार में दोनों बातों का इतने बड़े पैमाने पर साझा प्रदर्शन होना किसी के लिए भी वास्तविक सच्चाई (कारण) जानने की उत्सुकता के साथ-साथ बहुत कठिनाई पैदा कर देते है। क्योंकि हिन्दू लोग स्वयं कारण कुछ बताते हैं लेकिन काम कुछ और ही करते नजर आते हैं। इस उपलक्ष्य में दस दिन पहले से ही हर गांव, मोहल्ले, गली, चौक, बाजार में एक जगह रामलीला का प्रोग्राम तो होता ही है। लेकिन उससे भी आश्चर्य की बात यह है कि इस दशहरा की तैयारी में महीनों पहले से प्रत्येक गांव, मोहल्ले, गली, चौक, बाजार में जितना भी संभव हो सके उतनी संख्या में दुर्गा की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं । इन मूर्ति स्थलों की संख्या रामलीला स्थलों से दस गुना ज्यादा होती है। आम तौर पर देखने में यह दुर्गा माता का ही कोई महत्वपूर्ण त्योहार नजर आता है लेकिन वास्तविकता रूप में इसे लोग राम से जोड़ते हैं। इस भूल-भूलैया की स्थिति से बाहर निकलकर हम जानने का प्रयास करेंगे कि इस त्योहार के पीछे की वास्तविक सच्चाई क्या है? दशहरा को लोग विजयदशमी का नाम क्यों देते हैं? इसके पीछे का इतिहास क्या है? तथा इसका इस देश के मूलनिवासी बौद्धों से क्या सम्बंध है ?

सम्राट अशोक और विजयदशमी का इतिहास

दशहरें के सम्बन्ध वास्तव में भारत के महान चक्रवर्ती सम्राट अशोक से है। महाराजा अशोक विश्वविख्यात महान शासक थे। उनका साम्राज्य बहुत विशाल था। किसी भी राज्य विस्तार के हिसाब से उनकी महानता को मापना ठीक नहीं। उनकी महानता तो उनके मानववादी सिद्धान्तों के कारण है। इन्हीं उच्च सिद्धान्तों के आधार पर ही उन्होंने शासन किया। अपने दसवें धम्म अभिलेख में उन्होंने कहा कि "राजा की कीर्ति का मूल्यांकन प्रजा की नैतिक उन्नति से किया जा सकता है।" यही कारण था कि सम्राट अशोक ने युद्ध का विनाशकारी मार्ग छोड़कर बुद्ध के शांतिपूर्ण मार्ग का अनुसरण किया ।

उन्होंने अपनी प्रजा को सद्धम्म के कल्याणकारी मार्ग पर चलने का आदेश दिया और अहिंसा तथा सदाचार को अपने जीवन का आदर्श बनाया। उनका उद्देश्य था प्रजा की सर्वोपरि उन्नति। वास्तव में वह समस्त विश्व के प्राणियों का कल्याण चाहने वाले थे। जिसके लिए उन्होंने अपनी तरफ से कोई कसर नहीं छोड़ी। भारत की गौरवशाली कला और संस्कृति की शुरुआत भी सम्राट अशोक के समय से ही हुई। धम्म और बौद्ध स्तूपों की स्थापत्य कला इसके सर्वश्रेष्ठ प्रमाण हैं। उन्होंने आज से दो हजार वर्ष पूर्व भारत और पूरे विश्व को वही पाठ पढ़ाया जिसे आज संसार के सभी शांतिप्रिय देश संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से संचालित व क्रियान्वित करना चाहते हैं।

ऐसे महान सम्राट अशोक का जन्म इस पावन भारत भूमि पर अशोकावदान ग्रंथ के अनुसार लगमग 304 ईसा पूर्व चैत्र मास में शुक्ल-पक्ष की अष्टमी को हुआ था दिव्यावदान में अशोक की माता का नाम सुमद्रांगी मिलता है और उनके पिता का नाम बिन्दुसार था। जो मगध देश के राजा थे। जिनकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। अशोक बचपन से कही तीव्र और कुशाग्र बुद्धि का धनी था। बड़ा होने के नाते शीघ्र ही उसने सभी शास्त्रों का ज्ञान अर्जित कर लिया था। अशोक के सौतेले भाईयों में सबसे बड़े भाई का नाम सुसीम था। इसलिए राजा का उत्तराधिकारी होने का हक उसी का था किन्तु अशोक की तीव्र बुद्धि को देखकर सभी अमात्य अशोक को ही उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में थे। इससे असमंजस में पड़े राजा को सभी राजकुमारों की परीक्षा लेकर भी सुसीम और अशोक दोनों को उत्तराधिकारी बनाना पड़ा। महाराजा बिन्दुसार ने सुसीम को उपराजा बनाकर तक्षशिला भेजा और अशोक को उज्जैन के लिए रवाना किया। उज्जैन के रास्ते में ही विदिशा नगरी पड़ती थी। अशोक ने उज्जैन जाते समय यहीं पड़ाव डाला था। यहीं पर स्कन्धमित्रा की अशोक से मुलाकात हुई और स्कन्धमित्रा को देखकर अशोक बहुत प्रभावित हुआ। अशोक ने अपने आमात्यों से कहकर उसके माता-पिता का पता लगवाया और स्कन्धमित्रा को पसन्द करने की बात कही। यह जानकर नगर सेठ ने अपनी कन्या का विवाह कुमार अशोक के साथ कर दिया। वास्तव में यह कन्या शाक्य कुल से ही थी किन्तु परिस्थितिवश उसके पूर्वज विदिशा में आकर बस गए थे। यही देवी, विदिशा महादेवी के नाम से जानी जाती है। किन्तु वर्तमान सूत्रों के अनुसार महान अशोक की रानी का नाम असंधिमित्रा बताया जाता है।

अशोक को उज्जैन के लिए रवाना किया। उज्जैन के रास्ते में ही विदिशा नगरी पड़ती थी। अशोक ने उज्जैन जाते समय यहीं पड़ाव डाला था। यहीं पर स्कन्धमित्रा की अशोक से मुलाकात हुई और स्कन्धमित्रा को देखकर अशोक बहुत प्रभावित हुआ। अशोक ने अपने आमात्यों से कहकर उसके माता-पिता का पता लगवाया और स्कन्धमित्रा को पसन्द करने की बात कही। यह जानकर नगर सेठ ने अपनी कन्या का विवाह कुमार अशोक के साथ कर दिया। वास्तव में यह कन्या शाक्य कुल से ही थी किन्तु परिस्थितिवश उसके पूर्वज विदिशा में आकर बस गए थे। यही देवी, विदिशा महादेवी के नाम से जानी जाती है। किन्तु वर्तमान सूत्रों के अनुसार महान अशोक की रानी का नाम असंधिमित्रा बताया जाता है।

अशोक असंधिमित्रा के साथ उज्जैन पहुँचे वहाँ की शासन स्थिति ठीक हुई। विवाह के एक वर्ष बाद रानी ने पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम महिंद (महेन्द्र) रखा गया । इसके दो वर्ष के बाद एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम संघमित्रा (संघमित्रा) रखा गया ।

कुछ समय पश्चात महाराज बिन्दुसार मरणासन्न अवस्था पर पड़ गए तो उस समय पाटलीपुत्र में न तो सुसीम था और न ही अशोक। महाराज बिन्दुसार की इच्छा थी की इस समय सुसीम ही उनका उत्तराधिकारी बने किन्तु उसके आमात्यों के विचारानुसार केवल अशोक ही योग्य उत्तराधिकारी हो सकता था। उन्होंने अशोक को तुरन्त उज्जैन से पाटलिपुत्र आने का संदेश भिजवाया । अशोक सन्देश पाते ही पाटलिपुत्र आ गया सुसीम को भी संदेश दिया गया था किन्तु वह अज्ञात कारणों से समय पर नहीं आ सका।

महाराजा ने जब देखा कि सुसीम का कहीं कोई अता-पता ही नहीं, केवल अशोक ही उसके पास है। राजा ने अपना अंतिम समय नजदीक आता देख अपने सिर से राजमुकुट उतारा और अशोक के सिर पर रख दिया। इस प्रकार आमात्यों के प्रयत्नों से अशोक को सम्राट का पद प्राप्त हुआ। अशोक के राजा बनते ही राजमहल मे खुशियाँ छा गई। अशोक सन् 273 ईसा पूर्व के लगभग 34 वर्ष की आयु में मगध के राज्य सिंहासन पर आसीन हुआ। जनता को अशोक की सामर्थ्य और शक्ति पर पूरा विश्वास था ।

अशोक के सम्राट बनने से राजधानी पाटलिपुत्र में उत्सव मनाया जाने लगा, किन्तु उपराजा सुसीम को जब यह समाचार मिला, तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने अपने सैनिको के साथ राजसिंहासन को बलपूर्वक हथियाने के लिए तक्षशिला से पाटलिपुत्र की ओर कूच कर दिया। कहते हैं कि अशोक ने पाटलिपुत्र के बाहर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सैनिकों को बिठा दिया। जैसे ही राजकुमार सुसीम ने पाटलिपुत्र की सीमा में प्रवेश किया अशोक के सैनिको ने उसे घेर कर मार गिराया। इस प्रकार अशोक के समक्ष अब कोई राज्य का दावेदार नही रहा और वह मगध के एकछत्र महाराजा बन गए ।

सम्राट अशोक के बड़े भाई उपराजा सुसीम की मृत्यु के समय उसकी रानी सुमना गर्भवती थी। उसने सोचा कि अशोक के सैनिक उसे भी मार डालेंगे इसलिए अपनी जान बचाने और गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए उसने एक चांडाल के घर जाकर शरण ली । कष्टों में जीवन निर्वाह करती हुई कुछ दिनो पश्चात् न्यग्रोध (वट=बरगद) के पेड के नीचे उसने एक पुत्र को जन्म दिया। गांव के एक मुखिया ने राजपरिवार के सदस्य होने के कारण माता-पुत्र दोनो की सात वर्ष तक अपने संरक्षण में रखकर सेवा की। न्यग्रोध वृक्ष के नीचे जन्म लेने के कारण इस बालक का नाम 'न्यग्रोध कुमार' पड़ा ।

उसके श्रामणेर होने के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उस युग में बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रचार था। अच्छे-अच्छे बौद्ध भिक्खु अपने त्यागमय जीवन और विद्वत्ता से लोगों को बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षित कर रहे थे। अतः 'न्यग्रोध' भी विद्वान बौद्ध भिक्खुओं के संपर्क में रहकर बौद्ध बन गया । श्रीलंका के महावंस नामक बौद्ध ग्रंथ में न्यग्रोध के विषय में विस्तृत वर्णन मिलता है।

साभार
त्योहारों के रहस्य
रोशन बौद्ध
(पृ.सं. 11 से 15 तक)

रामकथा व सीता चरित्र

अनैतिक और काल्पनिक होने पर भी क्या रामकथा के प्रभाव को झुठलाया नहीं जा सकता?

अकसर कुछ लोक पूछते हैं कि आज के पौराणिक और धार्मिक कथाओं के अनुसंधान से क्या लाभ है, ऐसे प्रश्न पूछने वाले दो वर्गों में बांटे जा सकते हैं। एक वर्ग में वे लोग आते हैं जो राम को ईश्वर का अवतार मानते हैं और उन के बारे में आलोचना करना घोर पाप समझते हैं। अगर आप इन की मान्यताओं के अनुकूल लिखेंगे तो वे आप को प्रशंसा के पात्र और स्वर्ग के अधिकारी मानेंगे तथा रामभक्ति के प्रचारक के रूप में आप का गुणगान करेंगे। अगर आप उन की मान्यताओं के प्रतिकूल सत्य के अनुसंधान के लिए कोई नई बात लिखेंगे तो वे लोग आप को नास्तिक और धर्म पर आक्षेप करने वाला कह कर आप के खिलाफ विरोध का झंडा खड़ा कर देंगे। उन का उद्देश्य यह होता है कि दूसरे लोग विरोध के कारण ऐसी आलोचना से कतराने लगें।

दूसरे वर्ग में प्रगतिशील विचारों के लोग आतें हैं जो पौराणिक कथाओं की बात सुनना ही पसंद नहीं करते। पौराणिक कथाओं की बाते उन्हें आउट आफ डेट लगती हैं और वे उन की व्याख्या को अंधविश्वास फैलाने में सहायक मानते हैं। ये लोग यह भूल जाते हैं कि उन की उपेक्षा से जनता में फैला हुआ अधंविश्वास मिट नहीं सकता। रामकथा कितनी ही अनैतिहासिक और काल्पनिक हो, जनता पर पड़े हुए उस के प्रभाव को झुठलाया नहीं जा सकता। इस प्रभाव की ओर ध्यान न देना ठीक नहीं होगा।

पुरोहित वर्ग धार्मिक अंधविश्वास से प्रभावित जनता से धन और आदर पाने के लिए सच्चाई की खोज करने वालों का हमेशा विरोध करता है। इसमें उस का स्वार्थ निहित है। पुरोहित लोग धार्मिक आवरण ओढ़ कर ही साधारण जनता का शोषण करते हैं और उस के परम हितचिंतक और उपास्य बने रहते हैं। इसलिए सत्य के खोजियों को उन के विरोध की चिंता छोड़ कर सामान्य जनता तथा मानवता की भलाई के लिए कार्य करना चाहिए।

सत्य को विरोध से दबाया नहीं जा सकता। सहज जिज्ञासा मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसलिए सचेत लोगों के लिए यह बिलकुल स्वाभाविक है कि वे सत्य खोजने की कोशिश करें। सत्य की खोज का भार प्रगतिशील विद्वानों के ऊपर आता है। इसलिए उन्हें इस ओर उपेक्षा नहीं बरतनी चाहिए। वरना सत्य तक कौन पहुंचेगा?

सामान्य जनता में पौराणिक और धार्मिक कथाओं का आज भी बड़ा प्रभाव है। पुरोहित वर्ग हर देश में उन कथाओं की नई-नई व्याख्याएं कर के अपने स्वार्थ के लिए अंधविश्वास बनाए रखता है। इसे मिटाने के लिए प्रगतिशील बुद्धिवादी वर्ग को लगातार कोशिश करनी चाहिए। इससे सामान्य जनता को तर्कसंगत विचार मिलेंगे और उसकी बुद्धि का विकास होगा।

हिंदू समाज पर रामकथा का गहरा प्रभाव है। बच्चे छोटी उमर से ही रामलीला देख कर प्रभावित होने लगते हैं। यह प्रभाव धार्मिक भावनाओं से युक्त रहता है। उसके लिए राम पूज्यनीय देवता के रूप में ही आते हैं। धार्मिक भावना से प्रभावित जनता युगों से रामकथा के पात्रों को पूजती आ रही है। अंधी श्रद्धा की थाली ले कर वह उनकी आरती उतारती है। यद्यपि रामायण काल के सामाजिक जीवन की व्याख्या विद्वानों ने की है लेकिन जनता को उससे कोई मतलब नहीं, यही कारण है कि राम कथा के आदर्शों को अपने जीवन में उतारने के बजाय लोग उन्हें सतयुग की बातें कह कर उपेक्षित कर देते हैं।

भारत में रामराज्य हमेशा से आर्दश रहा है। आज भी देश में रामराज्य की व्यवस्था लाने की चर्चा चलती रही है। लेकिन क्या आम जनता के लिए रामराज्य सुखद और वैभवशाली था? क्या आम जनता को न्याय और समानता के अवसर प्राप्त थे? क्या रामराज्य हमारे लिए अनुकरणीय है?

वाल्मीकि रामायण में दी हुई घटनाओं को ध्यान में रखते हुए कोई ईमानदार आदमी जो समानता और न्याय चाहता है, रामराज्य को पसंद नहीं करेगा। रामराज्य में सारे अधिकार ब्राह्मण और क्षत्रियों को प्राप्त थे। इन लोगों को टैक्स नहीं देने पड़ते थे। उत्पादन और श्रम का सारा काम वैश्य और शूद्रों को करना होता था। न्याय और अवसर की समानता इन्हें बिलकुल प्राप्त नहीं थी।

रामराज्य में आम जनता की हालत बहुत खराब थी। लेकिन इस में जितना दोष राम का था, उस से अधिक जनता का। आम जनता अंधविश्वास और अज्ञान में थी। पढ़ने लिखने के समान अधिकार नहीं थे। इस तरह के समाज में बौद्धिक चेतना भला कैसे हो सकती थी। स्वयं राम भी विशेषधिकार प्राप्त पुरोहित वर्ग का विरोध नहीं कर सकते थे। इसलिए आम जनता को समान अवसर और न्याय देने में राम सफल नहीं हुए।

वास्तव में राम निमित्तमात्र राजा थे। सत्ता तो ब्राह्मणों और पुरोहितों के हाथ मे थी। राम उसी तरह के राजा थे जैसे यूरोप के मध्यकालीन राजा राम के पाप की कठपुतली हुआ करते थे। आज इस प्रजातंत्र युग में रामराज्य की बात करने में भी उसी स्वार्थी वर्ग का हाथ है जो शासन को अपनी कठपुतली बनाना चाहता है आम जनता के लिए तो वर्तमान लोकतंत्र ही ठीक है। राम, सीता तथा भरत आदि का आदर्श हमारे लिए लाभदायक हो सकता है, लेकिन आज की परिस्थिति में रामराज्य लाभकर नहीं है।

आम जनता की बौद्धिक चेतना न जगाई जाए, कर्तव्य और अधिकारों का ज्ञान न कराया जाए और अंधविश्वास का कोहरा न मिटाया जाए तो अच्छे से अच्छे राजा या राज्य प्रणाली का कोई लाभ नहीं। क्या हम ने रामकथा से कभी यह शिक्षा ग्रहण की है? हमें यह तो सीख ही लेना चाहिए कि जनजागरण के अभाव में कुछ स्वार्थी लोग शासन पर हावी हो कर मनमाना शोषण करते हैं और राम जैसा राजा भी उन का विरोध नहीं कर पाता।

वनवास के समय राम पुरोहितों के बंधन से मुक्त थे। उस समय उन्होंने मानवीय प्रेम से प्रेरित होकर निषादराज गुह को भाई भरत की तरह गले गया था। भीलनी शबरी के घर जा कर उस की लालसा पूरी की थी। दूसरी अनार्य जातियों के साथ मित्रता करके उन्हें समानता का अधिकार दिया था। लेकिन वही राम जब राजगद्दी पर बैठे तब उन्होंने बेकसूर शूद्र शंबूक को मार डाला। सीता को वनवास दे दिया। क्यों?

राम जैसा उदार और पवित्र भावनाओं का व्यक्ति इतना क्रूर नहीं हो सकता। लेकिन अपने राज्यकाल में राम को कुछ ऐसे काम अवश्य करने पड़े जिन से उन के नाम पर लांछन लग गया। यह सब उसी पुरोहितवादी व्यवस्था के कारण हुआ था। इसी के कारण रामराज्य हर युग के लिए आदर्श नहीं बन सका।

राम के वनवास के समय और राज्यकाल के व्यवहार के अंतर का कारण कुछ लोग यह बताते हैं कि वनवास के समय राम मुसीबत में थे, इसलिए तब तो राम को दूसरी जातियों से सहायता लेनी ही थी। राज्य मिल जाने पर सत्ता के मद में आ कर राम ने ऐसे काम किए। लेकिन शंबूक को मारने का फैसला तो नारद और दूसरे पुरोहितों ने ही दिया था। सीता को निकालने के लिए भी राम मजबूर थे, वरना वह सीता को निर्दोष और पवित्र मानते थे।

राजा नृग लाखों गौएं प्रति दिन दान करते थे। भूल से एक ब्राह्मण की गाय दान कर देने पर ब्राह्मण ने उन्हें शाप दिया था। राजा निमि को वशिष्ठ ने शाप दिया था। स्वयं राम को दुर्वासा ऋषि ने तुरंत न मिलने पर शाप की धमकी दी थी। इसलिए राम समझते थे कि रूढ़िग्रस्त जनता को उबारना उन के वश की बात नहीं है। ऐसा करने पर उन्हें भी राजा वेणु की तरह राज्य से अलग कर दिया जाता। इस घटनाओं से भी हमने कोई शिक्षा नहीं ली।

सीता के जीवन से हिंदू समाज ने यह आदर्श बड़ी गहराई से ग्रहण किया कि नारी को सीता के समान पतिव्रता और सती होना चाहिए। इस के बल पर हिंदू समाज का प्रत्येक सदस्य युगों से अपनी स्त्रियों से इन गुणों की अपेक्षा करता रहा। इस आदर्श के लिए हजारों स्त्रियों ने अपनी कंचन काया को आग में झोंक दिया लेकिन राम के चरित्र से उसी गहराई के साथ एक पत्नीव्रत की शिक्षा हम ने नहीं ली। बल्कि इसके विपरीत हम पचास साठ साल के होने पर भी अबोध बालिकाओं के साथ ब्याह रचा कर उस बेजबान गाय के बधिक बनते रहते हैं।

वाल्मीकि रामायण में नारी से पवित्रता और पति परायणता की अपेक्षा कदमकदम पर की गई है, लेकिन पुरूष से एक पत्नीव्रत पालन करने की अपेक्षा नहीं की गई है। उस युग में भयंकर रूप से बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी और सौतों के संघर्ष से भयंकर घटनाओं के होने का उल्लेख मिलता है।

सीता की अग्निपरीक्षा का आदर्श तो हर हिंदू को याद रहा लेकिन उसी रामायण में वर्णित इंद्र के अहल्या से व्यभिचार करने और गौतम द्वारा फिर से अहल्या को अंगीकार किए जाने की घटना याद नहीं रही। सीता के आदर्श के नाम पर नारी की परम पावनता का ही विचार हर युग में प्रबल बना रहा। रावण के स्पर्श और उस के यहां बंदी होने के कारण राम ने सीता की अग्निपरीक्षा भी ली और बाद में घर से भी निकाल दिया।

इस घटना को हिंदू समाज ने गांठ बांध लिया। उसका हर सदस्य नारी के साथ वही व्यवहार करने का अपने को उत्तराधिकारी समझता आ रहा है। लेकिन इस के प्रतिकूल रामकथा से यह शिक्षा हम ने नहीं ली कि राम ने उस सीता से विवाह किया, जिस के कुल का कोई पता नहीं था। उसे ऊंचे से ऊंचा सम्मान प्रदान किया। जीवन भर एक पत्नीव्रत का पालन करते रहे।

सीता के जन्म की विभिन्न कथाओं से ऐसा आभास मिलता है कि सीता का संबंध शायद अनार्य रक्त से था। इससे भी हम ने कोई शिक्षा नहीं ली।

राजनीतिक मैत्री स्थापित करने के लिए या अन्य परिस्थिति के कारण शासक वर्ग जब इस दिशा में दूसरी जातियों से संबंध बढ़ाना चाहता था तब धर्म के नाम पर समाज व्यवस्था के नियत्रंक पुरोहित उसका तीव्र विरोध करते थे, फल यह हुआ कि अपनी जाति तथा वर्ग के बाहर विवाह करने को कौन कहे, खानपान तक बंद हो गया, अगर हिंदू लड़की से जरा भी यौन संबंधी भूल हो गई तो सीता की तरह उसे समाज में सम्मानपूर्ण जीवन बिताने के सारे अवसर समाप्त हो गए।

इस विघटन से हिंदू समाज निरंतर क्षीण होता जा रहा है तथा अन्य समाज उन्हें सम्मानपूर्वक ग्रहण करके फलते फूलते रहे हैं। यौन संबंधी भूलों के कारण ही नहीं, बल्कि मुसलमानों, ईसाईयों तथा अछूतों के बरतन में भूल से भी पानी पी लेने पर या मुसीबत में उनके घर कुछ देर रह जाने पर भी औरत को उस घर में रहना दुर्लभ हो जाता था।

माता-पिता न चाहते हुए भी पुरोहितपंथी सामाजिक बहिष्कार के दबाव से उन्हें हमेशा के लिए छोड़ देते थे। यह ईश्वर का बनाया कानून नहीं था। यह क्रूर और स्वार्थी लोगों द्वारा रचा हुआ षड्यंत्र था। इसका विरोध व्यक्तिगत रूप से करके कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता। इस का निवारण जनजागरण से ही होगा और कुछ मात्रा में होने भी लगा है।

पुरोहितपंथी शक्तियां आम जनता से हमेशा यह अपेक्षा रखती हैं कि वे धर्मशास्त्र के नाम पर आँखें मूंद कर उन का समर्थन करती रहें। उनकी व्यवस्था को सिर झुका कर मानती रहें। उनके लिए बुद्धिवादी विचारधारा नास्तिकता का चिह्न है।

निश्चय ही उन के स्वार्थ के लिए यह दृष्टिकोण अच्छा है। लेकिन हजारों साल तक सिर झुका कर उनकी व्यवस्था मानते रहने पर भी समाज का कल्याण न हो सका। अंधविश्वास से ग्रस्त पिछड़ी जनता शोषित और पीड़ित होती रही और यह वर्ग हमेशा भाग्य और भगवान के नाम पर उनके विद्रोह को दबाकर मौज उड़ाता रहा।

प्रश्न है कि आम जनता का कल्याण कैसे हो सकता है? स्वामी शंकराचार्य के शब्दों में उनकी मुक्ति का केवल एक मार्ग है और वह आत्मज्ञान अथवा बौद्धिक चेतना। युगों से शोषित वर्ग में बौद्धिक चेतना की ही सबसे अधिक आवश्यकता है। इसमें बौद्धिक चेतना आ जाए तो देश की काया पलट सकती है। फिर इस की भलाई की बात सोचने की आवश्यकता किसी को नहीं है। अगर बौद्धिक चेतना न हुई तो जिस प्रकार राम जनता के लिए कुछ नहीं कर सके वैसे ही अन्य लोग भी असफल सिद्ध होंगे।

इस से स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति विशेष की उदारता राज्य की आम जनता को कोई लाभ नहीं पहुंचा सकती, विशेषकर प्रजातंत्र में। इसलिए यदि रामराज्य की भूल की पुनरावृत्ति नहीं करनी है और प्रजातंत्र में समस्त जनता को समानता और न्याय के आधार शोषण से मुक्त करना है तो हमारे लिए अनिवार्य है कि समस्त जनता में बौद्धिक चेतना लाने का प्रयत्न ईमानदारी से करें। यह संभव नहीं कि 80 प्रतिशत जनता अंधविश्वास के पुरोहितपंथी विचारों के पीछे दौड़ती रहे और हम प्रगतिशील लोक कल्याणकारी राज्य के निर्माण का स्वप्न पूरा कर सकें।

पुरोहितपंथी तथा सामंतवादी शक्तियाँ अपने देश में आज भी प्रबल हैं, इन की शक्ति जनता के पिछड़े विचारों में निहित है। इन का मुकाबला हम अस्त्र शस्त्र से नहीं कर सकते। यह तो विचारों की लड़ाई है। इस का एक ही रास्ता है कि सामान्य जनता में बौद्धिक चेतना उत्पन्न की जाए, परंपरागत अंधविश्वासों में फंसी रूढ़िवादी तथा पुरोहितपंथी जनता की जगह एक नवीन प्रगतिशील बुद्धिवादी जनमत बनाया जाए जिस के बल पर कोई भी उदार तथा न्याय पर आधारित शासन निश्चित हो कर जनता का हित कर सके।

यदि हम ने इस की उपेक्षा की, विशेषकर पिछड़े हुए शूद्रों ने यदि अपने वर्ग में बौद्धिक चेतना लाने का कार्य न किया तो जिस प्रकार पिछले चार पांच हजार वर्षों से हम जिस विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग से शोषित होते चले आ रहे हैं उस के मिटने की कोई संभावना नहीं है। उस वर्ग की भलाई करने में जिस प्रकार देवता जैसे महाराज राम का रामराज्य बेकार सिद्ध हुआ उसी प्रकार वर्तमान प्रजातंत्र भी बेकार सिद्ध होगा।

साभार : कितने खरे हमारे आदर्श
पृ.सं. 40 से 45 तक।
स० : राकेश नाथ

रावण–1 दुष्ट था या महात्मा?

लंकेश्वर रावण पुण्यात्मा और महापुरूष था। रामायण में बाल्मीकि ने उसे 'महात्मा' कहा है। जो लोग रावण को रामलीला में अपमानजनक विशेषणों से स्मरण करते हैं वे वास्तव में रावण के चरित्र को नहीं जानते। जिसे बाल्मीकि ने 'महात्मा' कहा, उसे 'नीच' और 'दुष्ट' कहना केवल दुराग्रह है। जो लोग अज्ञान के कारण पक्षपातपूर्ण दृष्टि से रावण की निंदा करते हैं, वे बाल्मीकि रामायण में सुंदरकांड के ये श्लोक पढ़ें :

महात्मनो महद्वेश्म् महारत्न परिच्छदम।
महारत्न समाकीर्ण द्दर्श स महाकपिः।।

–बाल्मीकि रामायण, 6/13–14

सर्वकामैरूतांच पानभूमिं महात्मनः

–बाल्मीकि रामणयण, 11/12

प्रातःकाल का सुहावना समय है। हनुमान सीता की खोज में व्यस्त हैं। महावीर ने हर राक्षस के घर वेदमंत्रों की ध्वनि सुनी।

षंडगवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्।
शुश्राव ब्रह्मघोषांश्च विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम्।।

–बाल्मीकि रामायण, सुंदरकांड,18/12

रावण के महलों में कभी कोई नीच काम नहीं किया जाता था। सदा वेद प्रतिपादित काम किए जाते थे। इसलिए वे देवता, जिन्हें लोग पूजते हैं, रावण के घर को पूजते थे। देखिए :

गृहाणि नानावसुराजतिनि देवासुरैश्चापि सुपूजितानि।
सर्वेश्च दोषैः परिवर्जितानि कपिर्ददर्श स्वबलार्जितानि।

–बाल्मीकि रामायण, सुंदरकांड 18/127/3

यदि कोई यह कहे कि देवता, रावण को महान होने कारण नहीं बल्कि भयमीत हो कर पूजते थे, क्योंकि रावण ने अपने बल से देवताओं को जीत लिया था, तो यह जान लेना चाहिए कि ऐसा करने से देवों की दुर्बलता और कायरता ही प्रकट होती है। जो देवता रावण के भय से उसकी पूजा करते थे, ये देवता कैसे! लोग देवताओं से आशा करते हैं कि उन्हें वे दुष्टों से बचाएं, पर जब वे रावण से थर थर कांपते थे और उसकी पूजा करते थे, तब भला वे दुष्टों से कैसे बचा सकते हैं?

वास्तव में बात यह है कि रावण में चरित्र की श्रेष्ठता और उसके पवित्र आचरण तथा महान कार्यों को देखकर ही देवता उसकी पूजा करते थे।

लंका को देख कर हनुमान ने आचर्श्य से कहाः

स्वर्गोऽय देवलोकाऽयमिंद्रस्येयं पुरी भवेत।
सिद्धिर्वेयं पराहि स्यादित्यमन्यत मारूतिः।

–बाल्मीकि रामायण, सुंदरकांड, 9/31

यदि रावण निर्दयी या दुष्ट होता तो उसके समकालीन हनुमान उसके पाप आचरण से परिचित होते। यदि परिचित थे तो फिर निर्दयी दुष्ट राजा की नगरी को उन्होंने स्वर्ग, देवलोग व इंद्रलोक क्यों कहा? जाहिर है कि रावण एक कुशल प्रशासक था। तभी हनुमान ने उसकी राजधानी की भरपूर प्रशंसा की।

रावण के आचरण पर सीताहरण का कलंक लगाया जाता है। रावण ने सीता का हरण किया, यह सच है पर सीताहरण के समय उसके मन में काम वासना नहीं थी। उसने काम वासना ने नहीं बल्कि बदला लेने की भावना से सीताहरण किया था।

रावण ने राम वनवास के चौदहवें वर्ष के आरंभ में सीताहरण किया और वह भी बहन के नाककान कट

जाने के बाद। यदि सीताहरण में रावण की काम वासना मूल कारण थी तो वह पहले तेरह वर्ष कहां रहीं? क्या वृहन्नला (अर्जुन) के समान रावण को भी नपुंसक रहने का शाप मिला था? स्पष्ट है कि सीताहरण का मूल कारण बदले की भावना थी, काम वासना नहीं।

रावण संयमी और सदाचारी था, कामी नहीं बाल्मीकि कहते हैं :

न तत्र काश्चित्प्रमदाः प्रसह्य वीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धाः।

न चान्यकामापि न चान्यपूर्वा बिना बराहीं जनकात्मजांताम्।

–बाल्मीकि रामायण,सुंदरकांड, 9/10

रावण के महलों में अन्यकामा (और को चाहने वाली) कन्या तथा अन्यपूर्वा (विवाहित) स्त्री न थी। यदि वह चाहता तो बलपूर्वक अन्यकामा कन्याओं को तथा अन्यपूर्वा स्त्रियों को अपने महलों में रख सकता था। लेकिन इसे वह अनुचित समझता था वह पापभीरू था। यदि उसने कभी परस्त्री की ओर आंख उठाई होती तो बाल्मीकि उसे सदाचार का प्रशंसापत्र न देते। उत्तरकांड वाली कथा कपोलकल्पित है।

उत्तरकांड बाल्मीकि ने नहीं लिखा था। यदि उन्होंने लिखा होता तो क्या वह रावण द्वारा वेदवती पर किए गए अत्याचार से परिचित न थे। यदि थे तो उन्होंने रावण को प्रशंसापत्र क्यों दिया? अतः उत्तरकांड बाल्मीकि कृत नहीं है, बल्कि बाद में किसी ने जोड़ दिया है।

देखना यह है कि पहल किसने की– राम ने या रावण ने। पहले राम ने शूर्पणखा के नाक कान कटवा दिए, फिर रावण ने सीताहरण किया। पहले राम ने हाथ उठाया, फिर रावण ने आप कहेंगे कि शूर्पणखा भगवान राम के पास गई और उन्हें तंग करने लगी, इसलिए उन्होंने नाक कान काट दिए।

यह माना जा सकता है कि शूर्पणखा ने राम से विवाह के लिए प्रार्थना की, जो सर्वथा न्यायसंगत थी। उत्तर में राम ने विवाहित होने के कारण अपनी विवशता प्रकट करके कहा कि लक्ष्मण अविवाहित है, उसके पास जाओ। पर लक्ष्मण ने उसे राम के पास भेज दिया। और राम ने फिर लक्ष्मण के पास इस तरह वे दोनों वीर एक स्त्री का उपहास करते रहे।

क्या यह सत्य है कि लक्ष्मण अविवाहित थे? यदि नहीं तो राम ने एक स्त्री से झूठ बोलने में संकोच क्यों नहीं किया। राम ने यह जानते हुए भी कि लक्ष्मण विवाहित हैं, शूर्पणखा को उसके पास क्यों भेजा। मर्यादा पुरूषोत्तम की महानता इसमें थी कि वह शूर्पणखा से स्पष्ट कह देते कि हम दोनों भाई विवाहित हैं, हम विवाह नहीं करेंगे, आप चली जाएं। किंतु उन्होंने सचाई को छिपा कर एक स्त्री से अनुचित उपहास किया। फिर राम ने संकेत करके लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के नाक कान कटवा दिए।

यदि कोई कहे कि शूर्पणखा सीता को खाने दौड़ी थी, इसलिए राम ने उसके नाक कान कटवा लिए, तो हम पूछते हैं कि इससे पहले शूर्पणखा ने कितने स्त्रीपुरूषों को खाया था? क्या इसका रामायण में कहीं उल्लेख है। यदि नहीं तो राम को यह भय क्यों व्यापा। क्या लक्ष्मण द्वारा नाक कान कटवाने के अतिरिक्त राम को सीता के बचाव का और कोई उपाय न सूझा। क्या नाक कान कट जाने पर शूर्पणखा सीता को नहीं खा सकती थी।

कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति बड़ी सुगमता से इस परिणाम पर पहुंच सकता है कि शूर्पणखा सीता को खाना नहीं चाहती थी। उसने केवल धमकी दी थी। आजकल भी लोग एक दूसरे को कच्चा खाने की धमकी देते हैं मगर आज तक किसी ने किसी को कच्चा खाते नहीं देखा।

षंडगवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम्
शुश्राव ब्रह्मघोषांच विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम्।

–बाल्मीकि रामायण, सुंदरकांड, 18/2

इस श्लोक से स्पष्ट है कि राक्षस यज्ञ करते थे। रावण की प्रजा में भी यज्ञों का प्रबल प्रचार था। फिर उसके लिए 'प्राप्तयज्ञहरणम्' विशेषण कितना असंगत है, और वह भी शूर्पणखा के मुख से।

सीता की खोज करते हुए हनुमान ने महलों के भीतर जा कर रावण की सोई हुई पटरानियों को देखा

सहस्त्रं वरनारीणा नानावेषविभूषितम्।
परिवृत्तेऽर्धरात्रे तु पाननिद्राव शंगतम्।

–बाल्मीकि रामायण, सुंदरकांड, 9/34

हनुमान उनके अद्वितीय सौंदर्य पर विस्मित हो गए :

इमानि मुखपद्यानि नियंत मत्तषट्पदाः।
अंबुजानीव फुल्लानि प्रार्थयंति पुनःपुनः।

–बाल्मीकि रामायण, सुंदरकांड, 9/38–39

परंतु जब हनुमान को सीता का पता न चला तब वह एक स्थान पर बैठ कर सोचते हैं :

विरूपरूपा विकृता विवर्चसो महानता दीर्घविरूपदर्शानाः
समीक्ष्यत्सा राक्षसराजयोषितो लयाद्विष्ट जनकेश्वरात्मजा

–बाल्मीकि रामायण, सुदंरकांड, 12/4

इस श्लोक में रावण की स्त्रियों को जो विशेषण दिए गए हैं, उनसे पता चलता है कि भूमंडल पर उन स्त्रियों से बढ़कर बदशक्ल कोई स्त्री नहीं थी। एक स्थान पर पद्मिनी कहना और दूसरे स्थान पर बदशक्ल बता देना कितना विपरीत और हास्यापद है।

उच्छेत्तारं च धर्माणां परदारभिमदर्शनम्।
पुरी भोगवतीं प्राप्य पराजित्य च वासुकिम्।
तक्षकस्य प्रियां भार्यां पराजित्य जहार यः।

–बाल्मीकि रामायण, सुंदरकांड, 32/12–14

परंतु सारी रामायण में कहीं भी कोई ऐसा स्थल नहीं मिलता जहां रावण ने किसी परस्त्री का सतीत्व हरण किया हो या उसे बलपूर्वक अंतःपुर में लाया हो।

रावण के महलों में अन्यपूर्वा स्त्रियां न थीं। एक स्थल पर उस पर तक्षक की स्त्री के हरण का कलंक लगाया जाता है और दूसरे स्थल पर उसके महलों में अन्यपूर्वा स्त्री का अभाव बताया जाता है, आखिर उसने तक्षक की स्त्री को हर कर रखा कहां था?

इन परस्पर विरोधी बातों से स्पष्ट है कि बाल्मीकि रामायण में प्रक्षिप्त श्लोक भरे गए हैं। यह सोचना मूर्खता होगी की खुद बाल्मीकि ने ऐसी विरोधी बातें लिखी होगीं।

यह भी विचारणीय है कि रामायण में जहां कहीं असंबद्ध निंदात्मक बातें हैं, वे सब रावण और राक्षसों से संबंधित हैं। यह क्यों?

यह एक सर्वसम्मत बात है और रामचंद्र के भक्त भी इसे स्वीकार करते हैं कि रावण षडंग वेदज्ञ था। उसकी प्रजा में वेदों का काफी प्रचार था। घर घर वेदों का स्वाध्याय होता था। अतः रावण को वेदज्ञ और यज्ञ का अनुष्ठाता बताने वाले, तथा प्रशंसापरक श्लोक बाल्मीकिकृत हैं और निंदात्मक प्रक्षिप्त हैं।

शूर्पणखा के नाक कान काट कर राम ने रावण का भारी अपमान किया, जिसे वह सह न सका और उसने राम को अपमानित करने की ठान ली। क्योंकि राम ने उसकी अबला बहन पर अपना शौर्य दिखाकर रावण का अपमान किया था, इसलिए रावण ने भी 'शठे शाठ्यं समाचरेत' की नीति अपनाई बदले में उसने उनकी पत्नी का हरण करके उनका अपमान किया।

इस में संदेह नहीं कि 'वाल्मीकि रामायण' में कई जगह रावण के लिए 'दुरात्मा' शब्द का प्रयोग किया गया है और दो एक स्थलों पर तो महात्मा के साथ घृणित विशेषण भी प्रयुक्त किए गए हैं। इनका उल्लेख आगे किया जाएगा।

एक पुस्तक में एक ही पुरूष के संबंध में परस्पर विरोधी विशेषणों का प्रयोग आश्चर्यजनक है। स्मृतियों में भी परस्पर विरोधी बातें मिलती हैं, परंतु उन का समाधान भी उन्हीं में मौजूद होता है। स्मृति और इतिहासों की परस्पर विरोधी बातों में जमीन आसमान का अंतर है। स्मृति में परस्पर विरोधी बातों का समाधान होने के बावजूद उनकी स्वतंत्र सत्ता भी रहती है। किंतु इतिहास में जहां एक व्यक्ति के संबंध में परस्पर विरूद्ध बातों का उल्लेख होगा, वहां समाधान में दोनों बातों में से एक बात को सर्वथा निर्मूल सिद्ध करना पड़ेगा।

शूर्पणखा नाक कान कट जाने पर रोती चिल्लाती रावण के दरबार में पहुंची। उसने बीस भुजाओं वाले रावण को सिंहासन पर बैठे देखा :

विंशंदुंजं दशग्रीवं दर्शनीयपरिच्छदम्।

–बाल्मीकि रामायण, अरण्यकांड 32/8

परंतु सीता की खोज में लंका पहुंच कर हनुमान ने रावण को पलंग पर सोते देखा तो उसके एक मुख और दो भुजाएं थीं :

तस्य राक्षससिंहस्य निश्चय क्रम महामुखात्

–बाल्मीकि रामायण, सुंदरकांड, 10/24

कांचनागंदसत्रद्वौ द्ददश स महात्मनः
विक्षिरौ राक्षसेंद्रय भुजाविंद्र ध्वजोपमौ।

–बाल्मीकि रामायण, सुंदरकांड, 10/12

संपाती वानरों को रावण की पहचान बताते हुए कहता है कि 'भिन्नंजनययोपयः' अर्थात उसका शरीर सुरमे से ढेर के समान काला है परंतुः

राजर्षिपितृदैत्यानां गंधर्वाणां च योषितः
राक्षसानां च याः कन्यातस्य कामवशं गताः।

–बाल्मीकि रामायण, सुंदरकांड, 10/68–69

राजर्षि, ब्राह्मण और दैत्यों की कन्याएं सुरमे से ढेर के समान काले रावण पर मोहित हो गईं। रावण का काला होना और फिर कन्याओं का मोहित होना परस्पर विरोधी बातें हैं।

शूर्पणखा ने लंका में रावण को नीचे लिखे विशेषणों से युक्त देखाः

प्राप्तयज्ञहरम् दुष्टं ब्रह्मघ्नं क्रूरकारिणम्।

हनुमान ने लंका पहुंच कर क्या देखा, इसके बारे में लिखा गया है :

सेवा में,

नाम श्री.....

पता .....

.....

.....

बदला लेने की भावना से किए गए सीताहरण रूपी अपराध पर रावण को घृणित विशेषणों से युक्त कर राम भक्तों ने पृथ्वी और आकाश के कुलाबे मिलाए हैं पर किसी ने मर्यादा पुरूषोत्तम राम से यह नहीं पूछा कि उन्होंने भाई को संकेत करके एक अबला के नाक कान क्यों कटवा दिए। आखिर उसका अपराध क्या था? यही कि उसने विवाह के लिए प्रार्थना की थी, जो उस समय 'अनावृताः किलपुरा' के अनुसार साधारण प्रथा थी। एक बड़ा प्रश्न यह है कि यदि राम शूर्पणखा से विवाह नहीं करना चाहते थे तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में दो टूक उत्तर क्यों नहीं दिया। तिल का ताड़ क्यों बनाया। झूठ बोल कर उसे लक्ष्मण के पास क्यों भेजा।

कुछ लोग कहते हैं कि रावण अत्याचारी था। वह मुनियों से रूधिर का कर लेता था। ये बातें रावण को जनता की दृष्टि में गिराने के लिए गढ़ी गई हैं।

यह कुकर्म वह सपने में भी न कर सकता था सीताहरण के समय जटायु से रावण की मुठभेड हुई। उसके आचरण के बारे में जटायु ने कहा :

दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रयः
भ्रातस्ववं निंदितं कर्म कुर्त्त नार्हसि सांप्रतम्।

–बाल्मीकि रामायण अरण्यकांड, 50/3

यदि रावण ने सीताहरण से पहले कभी मुनियों से रूधिर का कर लिया होता तो जटायु उसे फटकारता और धिक्कारता। वह उससे पहले पाप (मुनियों से रूधिर का कर) की बात भी कहता। किंतु जटायु उसे सनातन धर्मानुरागी कहता है। और 'सांप्रतम' शब्द से स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि सीताहरण से पहले रावण ने कोई निंदित कर्म नहीं किया था।

सीताहरण के अपराध के बाद उस प्रकार की कपोल कल्पित कथाएं रावण को कलंकित करने के लिए रची गईं।

साभार :
कितने खरे हमारे आदर्श
पृ.सं. 57 से 63 तक।
सं. राकेश नाथ